"हर समय प्रसन्न रहना ईश्वरकी सबसे बड़ी भक्ति है।"

-परमपूज्य संत श्री आशारामजी महाराज

सहज - वाणी

❁ निवेदन ❁

परमपूज्य स्वामीजी के अमृत–वचनों का पाँचवां संकलन आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है। सहज बातचीत में आध्यात्मिक गूढ़ रहस्यों को स्वामीजी ने ऐसी सरलता व आत्मीयता से भक्तों के सम्मुख प्रकट किया है कि तुरन्त हृदयगम्य बन जाते हैं।

स्वामीजी की अमृतवाणी सांसारिक दु:खों से पीड़ित मनुष्य को अमृतमय शीतलता देती है। उसके हताश-निराश जीवन में नवीन उत्साह का सञ्चार करती है और अर्जुन की तरह शस्त्र फेंककर दु:खों-कठिनाईयों के सम्मुख घुटने टेके हुए मनुष्य में पुरुषत्व का सञ्चार कर उसे पुनः अपने शाश्वत् शान्ति की प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर कर देती है।

इस संकलन के पूर्व के संकलन भी उपलब्ध हैं और कुछ ही दिनों में आगे के संकलन भी प्रकाशित होंगे। यदि आप मंगाना उचित समझें तो अवश्य लिखें। आपकी यथायोग्य सेवा करने को हम सदैव तत्पर हैं।

–निवेदक–

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

साबरमती नदी के पवित्र तट पर एक सफेद वस्त्रधारी संत के दर्शन होते हैं जिन्हें लोग संत श्री आशारामजी महाराज के नाम से पुकारते हैं। उनके दर्शन मात्र से ही हृदय में अलौकिक शान्ति का अनुभव होता है और भारत के महान् महर्षि श्री वशिष्ठजी महाराज, संत कबीर, संत गुरु नानकदेव, श्री विवेकानन्द, श्री रामतीर्थ इत्यादि विभूतियों का सहज स्मरण हो आता है।

'पूज्यश्री' का जन्म १९ अप्रेल सन् १९४१ में सिंध प्रान्त के बेराणी गांव के सद्भाग्यशाली नगरसेठ श्री थाहुमल सीरूमलानी के पवित्र गृह में हुआ था। 'पूज्य श्री' के जन्म मात्र के तुरन्त पश्चात् ही कई अलौकिक घटनाएँ घटी और कुटुम्ब की समृद्धि व सुखशान्तिमें भी अभूतपूर्व वृद्धि होने लगी थी। पूज्यश्री के हावभाव, अन्य क्रियाएं एवं तेजोमय मुखमण्डल देखकर तीन वर्ष की अवस्था में ही उनके कुलगुरु ने भविष्यवाणी कर दी थी कि 'यह बालक भविष्य में महान् सन्त बनकर कई लोगों को जन्म मरण के कष्टों से छुड़ाएगा।'

अपनी युवावस्था में ही स्वामीजी ने गृहत्याग कर हिमालय व आबू की गहन गुफाओं एवं नर्मदा के पवित्र तट पर कठिन तपस्या कर आत्म-साक्षात्कार किया और आज उसी पहाड़ों एवं घने जङ्गलों से प्राप्त की हुई अमूल्य आध्यात्मिक अमृतनिधि (खजाना) खुले हस्त साबरमती के पवित्र तट पर संसार के तापों से तपित-थकित लोगों में बाँट रहे हैं। उसी निधि का कुछ अंश आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

—संकलनकर्ता

"यह सदा ध्यान रहे कि हर समय सदा शान्त, स्थिर और आत्मनिष्ठ रहना तुम्हारा सर्व प्रथम कर्तव्य है । ऊपर से जो बातें तुम्हें बाधा और विलम्ब डालने वाली प्रतीत होती हैं, वे वास्तव में तुम्हारी आंतरिक शक्ति और पवित्रता को बढ़ाने वाली हैं ।"

विषय-सूची — पृष्ठ

१. जीवन में मौत और मौत में जीवन छिपा है — १
२. मन को सीख — १५
३. भजन — २५
४. ईश्वर के मार्ग पर चलना है तो विघ्नों की परवाह न करें — २६
५. ईश्वर सर्वत्र हैं, मगर उसे देखनेकी आँख चाहिये....।
६. हमें आत्मसाक्षात्कार होगा कि नहीं — ५८
७. परमार्थ साधन के लिये शरीर स्वस्थ बनाएँ — ६१
८. भक्तों के भाव — ९०

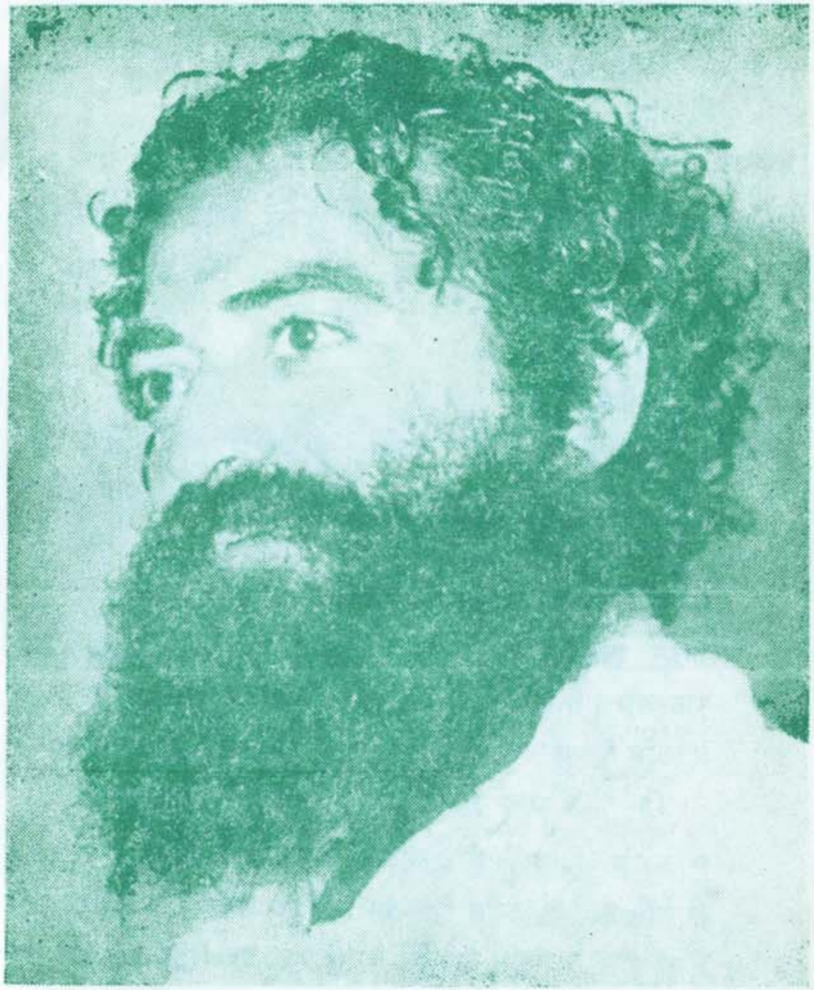

'... बहुत कुछ हम जानते हैं परंतु यदि संसार - सागर से तरना नहीं जानते तो सब व्यर्थ हो जायगा !' — स्वामीजी

जीवन में मौत और मौत में जीवन छिपा है–

४–८–७६

बुधवार

दोपहर के ११॥ बजे हैं। सत्संग भवन में स्वामीजी के श्रीमुख से निकली सहजवाणी का भक्तगण पान कर रहे हैं। स्वामीजी –

इस फानी दुनियाँ में जो आया है वह जायगा हो। जो उत्पन्न हुआ है वह लय होगा हो, जो पैदा हुआ है वह मरेगा ही। यह विधि का अकाट्य विधान है। सभी मरते हैं। एक बार सबको मरना ही है पर कैसे मरना चाहिये यह कोई नहीं जानता। यह वही जानता है जिसने जीते जी मर कर देख लिया हो।

सच्चे अर्थोंमें जीवन वही जी सकता है जिसको जीवन से मोह नहीं है और सच्चे अर्थों में मर वही सकता है जिसे मौत से भय नहीं है। यहविचित्र तथ्य है कि जिसको जीवन से आसक्ति है वह ठीक से जी नहीं सकता और जिसको मौत से भय है वह ठीक से मर नहीं सकता। जीवन में मौत और मौत में जीवन छिपा हैं।

संत ही जानते हैं । यदि उनकी कृपासे संसारी तुच्छ वस्तुओं में सत्यबुद्धि करने वाला हृदय अपने अन्दर बिराज मान शाश्वत् को देखने वाला बन जाय तो जीवन का इससे बड़ा अहोभाग्य और क्या हो सकता है ?

बाह्य विद्या नश्वर विद्या है। बाह्य विद्या थोथी विद्या है बाह्य विद्या रोटी कमा सकती है, धन कमा सकती है, व्यक्ति के थोथे अंहकार को मजबूत कर सकती है, वह नर को नारायण से दूर ले जाने का काम कर सकती है। वह हर्ष दे सकती है और हर्ष के पीछे शोक का आना अनिवार्य है। वह सुख दे सकती है पर सुख के पीछे दुःख का आना अनिवार्य है। वह विद्या व्यक्ति को लख-चौरासी के चक्कर में भटका सकती है, चक्कर से मुक्ति नहीं दिला सकती।

और हम सब इसी नश्वर विद्या के पीछे लगे हैं । इसी में विशेषज्ञता प्राप्त करने में लगे हैं। कैसे अधिक से अधिक भोग सामग्री संसार को धोखा देकर भी इकट्ठी करूँ ? वह नहीं जानता कि वह संसार को धोखा नहीं दे रहा है अपने आप को धोखा दे रहा है। इन नश्वर चीजों के पीछे दौड़कर अपने शाश्वत को पहचानने का जो सच्चा कर्त्तव्य है उसको भूल रहा है। अपने आपको बहुत बुद्धिमान मानता है पर वह अपने को व्यवहार में एक कुत्ते से भी गया बीता साबित कर रहा है।

बाबा काली कमली वाले द्वारा रचित 'पक्षपात रहित अनुभव-प्रकाश' ग्रंथ में भैरव का वाहन एक श्वान (कुत्ता) मनुष्य को अपनेसे भी निम्न कोटि का सिद्ध करता है। वह कहताहै-मुझको मनुष्य नीच कहता है परन्तु विचारपूर्वक देखें तो मनुष्य मुझसे भी नीच है। मैं तो नमक हलाल हूँ, अपने मालिक से द्रोह नहीं करता उसकी सेवा बजाता हूँ-मालिक का वफादार हूँ, अल्पनिद्रावाला हूँ। जो रूखा सूखा मिलता है उसी को खाकर सन्तोष कर लेता हूँ और कभीकोई शिकायत नहीं करता। समय अनुसार स्त्रीभोग करता हूँ। मैं अहंकार भी नहीं करता हूँ और मान अपमान में सम रहता हूँ। इस के विपरीत मनुष्य देहाभिमानी, अतिकामी, क्रोधी, लोभी, अहंकारी, द्रोही, कपटी, इर्ष्यालु, अन्यायकारी, असहनशील और अधीर है। इसलिये जाति से मुझे नीच या दुष्ट नहीं कहे, मेरे गुण देखें और नीच उसे कहना चाहिये जिसमें इस प्रकार के नीच गुण हो।

इसी प्रकार शीतला देवी का वाहन (गधा) भी कहता है कि मैं मनुष्य की कितनी सहायता करता हूँ ? इधर उधर से रूखा सुखा चर कर अपना पेट भर लेता हूँ, मेरे पर खूब कठोर मनुष्य का शासन है, मैं बहुत सहन करता हूँ फिर भी कभी शिकायत नहीं करता।

और मनुष्य ! मनुष्य जिन्दगी भर काम्य वस्तुएँ इकट्ठी करता रहता है, फिर भी उसकी आवश्यकताएँ कभी पूरी नहीं होती।

उसे कभी सन्तोष नहीं होता। उसकी शिकायत, उसकी 'यह मिले वह मिले' की फरियाद कभी पूरी नहीं होती ।

संत कहते हैं-हे मनुष्य ! तू शाहों का शाह है । तू क्यों अपने आपको दीन बना रहा है? बस, अपनी फारियाद छोड़ दे, अपनी यह 'चाह' छोड़ दे । इसी ने तुझे दीन बना रखा है। तू तो स्वयं शाहों का शाह है। तू स्वयं ही काका मिटकर अपने को भतीजा मान रहा है। बस, एक बार अपनी चाह मिटा कर तो देख ! तू खुद ही कह उठेगा —

हम खुदा थे गर न होता दिल में कोई मुद्दा ।
ख्वाहिशातों ने हमारी हमको बन्दा कर दिया।

संत तो रास्ता बताते हैं। हम भूल जाते हैं कि यह महान् जीवन हमको उस परमात्मा से प्रेम करने के लिये, उससे एक होने के लिये मिला है । संत अथवा गुरु ऐसे जिन्दा दिलों को ढूँढते हैं जो मालिक की तड़फ में बेचैन हो सके, जो मालिक के बिना रह नहीं सके । वे तो उन्हें मालिक से मिलने के लिये ऐसे जिन्दा दिलों को गुरु मंत्र रूपी टेलीफोन का नम्बर दे देते हैं, फिर तो केवल ड़ायल घुमाने को जरुरत रहती है। ड़ायल घुमाने का, मंत्र जपने का ढंग तक वे बता देते हैं । इस प्रकार वे तो अपने मालिक से तार मिलवा देते हैं । उनकीतरफ से कोई ढील नहीं है । ड़ायल घुमाने वाले ही ढील कर जाते हैं । ड़ायल घुमाने वाले ही नहीं मिलते । मिलते हैं तो पूरी जिज्ञासा और फुर्ती वाले नहीं मिलते । ढील

अपनी तरफ से होती है और दोष यह देते हैं कि या तो लाइन खराब है या टेलीफोन या और कुछ नहीं तो शायद नम्बर ही गलत होगा ।

जहाँ नम्बर पर संशय हुआ वहीं समझो हमारी गाड़ी रुक गई। आगे बढ़ने का रास्ता रुक गया और पतन वाले रास्ते का द्वार खुल गया ।

'संशयात्मा विनश्यति' (गीता)

एक तो यह रास्ता ही बड़ा पतला, बीहड़, दुरूह जहाँ पग पग पर श्रद्धा डिगाने वाले मिलते हैं फिर हममें गुरु के प्रति अश्रद्धा हुई कि समझो आगे का रास्ता बन्द हो गया ।

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ॥
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥३९॥
(अध्याय—४)

'हे अर्जुन ! जितेन्द्रिय तत्पर हुआ, श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है, ज्ञान को प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है ।'

स्वामी विवेकानन्द अपने गुरुभाई को एक पत्र में लिखते हैं— है..........! ध्यान रहे किसी भी प्रकार, किसी भी परिस्थिति में अपने गुरु के प्रति श्रद्धा न घटे । यदि गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा घटी तो समझो वहीं तुम्हारा पतन हो गया ।

संत तो बादल हैं। वे तो हर जगह बरसते हैं। जहाँ मरूभूमि है, पथरीली भूमि है वहाँ भी और जहाँ उर्वर भूमि है वहाँ भी। हम यदि मरूभूमि बने रहे तो लाभ नहीं उठा पाएंगे। इसलिये उर्वर भूमि बन जावें।

संत कहते हैं—

कोई पीवे प्याला प्रेम का तो मैं देवाँ भर भर भर,
पी के करेगा खुशियाँ नहीं तो ढूंढे दर दर दर।

संत रास्ता बताते हैं। हम रास्ता देखें और चल पड़ें। प्रमाद नहीं करें। नींद में न पड़े रहें क्योंकि—

नींद कहे मैं जम की मासी,
एक हाथ खड्ग दूसरे हाथ फाँसी।

यदि गफलत में रहे तो हम जहाँ पहुँचना है वहाँ नहीं पहुँच पाएंगे, जो लक्ष्य है उसको नहीं हासिल कर पाएंगे और संसार की रंगीनियों में ही खो जाएंगे। फिर यम का डंडा हम पर लागू हो जाएगा। जैसे धोबी कपडे को घुमा घुमाकर पत्थर पर पटकता है वैसे यम का डंडा हमको धुनेगा।

'अब न समझे, समझेगा तभी
जब मार पडे उधड़े चमड़ी।'

इसलिये समय रहते चेत! संत के प्रति, अपने सद्गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा जगाकर, गन्तव्य स्थान को पहचान कर, देर न कर चल पड़! देर न कर, प्रमाद न कर! अन्यथा विचार विचार में यह जिन्दगी यों ही पूरी हो जायगी।

मक्सदे जिन्दगी न खो यूँ ही उम्र गुजार कर,
अक्ल को होश से जगा, होश को होशियार कर।

मरना है तो किसी की याद में मरें, अपने प्यारे को पाकर मरें। नश्वर के पीछे क्या मरना! जो सदा रहे उसे पाकर मरें। मकान भी रहे, दुकान भी रहे, गलीचे भी रहें, गप्पी दोस्त भी रहें और यार भी—वह प्यारा भी मिले; यह नहीं हो सकता। रोटी की चिन्ता भी करते रहें, लोगों के कहने की चिन्ता भी करते रहें और मालिक से मिलना भी हो जाय! अहः! धन्य है ऐसी बुद्धि पर! बीज मिटेभी नहीं और पेड़ बनना चाहता है! तेल और बाती भी बची रहे और प्रकाश भी मिल जाय! नहीं! यह नहीं हो सकता। दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती।

अरे, वह उसे मिला है जिन्होंने अपने शीश की परवाह न की, अपने मान-अपमान की परवाह न की और चल पड़े। वही उस प्यारे के प्रेम का पान कर सका है।

'प्रेम सुराही सो पीये जो सीस दक्षिणा देत
लोभी सीस न दे सके नाम प्रेम का लेत।'

अपने घर, अपने वैभव, अपने यश, अपनी महत्वाकांक्षाए सब पर ट्रेक्टर घूम जाने दो, तभी वह झाँकता है, तभी उसका मधुर मुस्कान भरा चेहरा सामने आता है, तभी वह उसे अपनाता है। उससे प्रेम करने के लिए सबको ऐसा ही करना पड़ा है। जिन्होंने उसे पाया है, जिन्होंने उससे प्रेम किया है—उन्होंने समस्त संसार

यही कहते हैं—बस, लड़के की शादी करा देता फिर मरता तो अच्छा रहता। कोई कहता है पौत्र का मुँह देख लेता तो शांति से मरता, ये लड़के–ये बहुएँ मेरे जाने के बाद आपस में लड़ेगी। पता नहीं क्या क्या चिन्ता करते हुए निराश-मन लोग इस दुनियां को छोड़ जाते हैं। मौत आती है वह किसी की नहीं सुनती। वह अपना काम पूरा करती है।

तो सारे काम पूरे किसी के नहीं हुए। और बुढ़ापे में भक्ति करेंगे! जब किसी काम के न रहेंगे तब भक्ति करेंगे? जब किसी काम के नहीं रहोगे तब भजन करने के काम के भी नहीं रहोगे। और ईश्वर इतना सस्ता नहीं है, इतना वह निकम्मा नहीं है कि निकम्मे लोगों को मिलेगा।

वृद्ध होने पर भक्ति करने की क्यों सोचते हो? वृद्ध होने पर भेज दिये जाओगे वृद्ध–आश्रम में; वहाँ भी भक्ति नहीं होती, घर की चिन्ता होती है, लडकों के दुर्व्यवहार लड़कों की पत्नी की अवहेलना की चर्चा व शिकायत करते हैं। वहाँ भी मोह व क्रोध पीछा नहीं छोड़ते।

भगवान की भक्ति करना कोई ऐसी वैसी चीज नहीं है, कोई बच्चों का खेल नहीं है! भक्ति करना कायरों का काम नहीं है, शूर वीरों का काम है।

कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय,
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरण कुल खोय।

निर्भय बनो। दुर्बलता को अपने जीवन में स्थान मत दो। जो डरता है उसे दुनियाँ डराती है। यह बात तो लालिया(कुत्ता) भी जानता है। वह भी जो डरता है उसी के पीछे भागता है, उसी को भगाता है। कभी हाथी को भगाते कुत्तो को देखा है? दु:ख भी जो दु:खी होते हैं उन्हीं के पीछे पड़ते हैं। इसलिये दु:खों से घबराने की आवश्यकता नहीं है। वे तो आए हैं अतः चले जाएंगे। आज नहीं तो कल जाएंगे। उनको जाना ही पड़ेगा। तुम हुंकार भर कर कहो—दु:ख मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं? मैं तो इस देह व्यवहार से ऊपर साक्षी चैतन्य सत्ता हूँ। मैं सबका द्रष्टा हूँ। कान अच्छा शब्द सुनना चाहते हैं, नासिका सुगंध चाहती है, जीभ हलवाई की दुकान ढूंढ़ती है; इन्होंने मुझे बहुत भटकाया है पर अब मैं इनके कहने में नहीं चलने वाला। अब ये मनमानी नहीं कर सकते। इस प्रकार अपने विवेक को जगाओ। संसारके मिथ्यापन को जानो। संसार में रहो, व्यवहार करो पर निर्लेप होकर, जल में कमलवत्। और फिर—

'गुलाब बनकर महक, तुझको जमाना जाने'

इस मिथ्या संसार से मोह मत करो। नश्वर शरीर में रह-कर इसका उपयोग कर अपने शाश्वत आत्म–स्वरूप को जान लो! यह शरीर अपने आप मरे इससे पूर्व ही मरना सीख लो—

मरो मरो सबको कहे पर मरना न जाने कोय,
एक बार ऐसा मरो कि फिर मरना न होय।

सकता हूँ। जैसे पानी की लहरें पानी के बिना नहीं रह सकती किंतु पानी लहरों के बिना रह सकता है। अब मैं तेरे को साक्षी भाव से देखूँगा, क्योंकि तू तो अस्थिर है, हर समय परिवर्तनशील है जबकि मै तो एक रस हूँ।'

यदि आपको लगता है कि मन अपने बस में नहीं आता तो उसकी दिशा बदल दो। संसार के विषयों से मोड़कर उसे ईश्वर चिन्तन में लगा दो। पानी को भी यदि निर्यत्रित नहीं करें तो वह खेती व गाँव के गाँव उजाड़ देता है। यदि उसे नियन्त्रित करें, उसकी नहरें निकाल कर सिंचाई करे तो हरे हरे खेत लह-लहा उठें और गाँवों में समृद्धि फैल जाय। वैसे हो मन को यदि मनमानी न करने देकर उसे परमात्म चिन्तन में लगा दिया जाय तो वही मन जो हमें विनाश की ओर ले जा रहा था हमको पर-मार्थ की ओर ले जाकर हमको परम शान्ति का पद दिला सकता है।

साधक को अपना देहध्यास भुलाकर आत्म भाव का चिंतन करना चाहिये। यदि सिर में दर्द हुआ तो दर्द सिर में हो रहा है मुझमें नहीं, मै उसे जान रहा हूँ। आँख में हुआ, हाथ में हुआ तो मेरी आँख व मेरे हाथ में दर्द हो रहा है मुझ में नहीं, मैं तो जान रहा हूँ। हकीकत में मेरे में दर्द हो ही कैसे सकता है? क्योंकि जानने वाला सदैव पृथक् होता है। इज्जत बेइज्जत, मान-अपमान, सुख-दुःख, रोग-तन्दुरुस्ती, जरा-मरण आदि मेरे में होता

ही नहीं। यह सब शरीर में होता है। यह सब शरीर के धर्म हैं। मैं शरीर नहीं हूँ। मैं तो शरीर की हर क्रिया को जानने वाला हूँ। रे नादान मन! तू ही अपनी कल्पना करके शरीर के साथ एक होकर सुख-दुःख आदि अपने में मान लेता है और मैं भी मूर्खता से तेरे साथ एकात्मता कर लेता हूँ। लेकिन अब मैं तेरे इस झाँसे (धोखे) को समझ गया हूँ। अब मैं लालबुझक्कड़ की तरह तेरे धोखे में नहीं आऊंगा।

एक गुरु था लाल बुझक्कड़। उसने अपने चेले को भण्डारा करने के लिये कहा। चेले ने भण्डारे की व्यवस्था की। सारे शहर को निमन्त्रण दिया। उसने बड़े कुशल रसोइये बुलवाकर रात को भी काफी देर तक जागकर खूब पकवान तैयार करवाए। चावल, खीर पूड़ी, मालपुए, नुक्तीं आदि के बड़े बड़े ढेर एक गोदाम में लगवा दिये और गोदाम बन्द करके चेला अपने कमरे में आकर सो गया। गोदाम का दरवाजा बन्द करते समय बेख-बरी से उसमें एक कुत्ता रह गया। सुबह तो होगा सो होगा, कुत्ते ने रात को ही भण्डारा शुरु कर दिया। खूब खीर-पूडी व अन्य माल-मलीदा उसने खाया, परन्तु बहुत दिन से मिला था इसलिये अपने को रोक नहीं सका और अत्यधिक खा गया। दरवाजा बन्द होने से वह बाहर भी निकल नहीं सका और घबरा-कर अन्दर हो दौड़-भाग करने लगा। उसकी दौड़ भाग से और

पति का पत्नी से प्रेम, माता-पिता का पुत्र से प्रेम, मित्र-मित्र का प्रेम, भाई-भाई का प्रेम यह सब सांसारिक प्रेम स्वार्थ का प्रेम होता है। जनता नेता से अपनी सहुलियतों के लिये प्रेम जताती है। नेता अपने अपने वोटों के लिये जनता से प्रेम करता है। पति अपने सुख के लिए पत्नी से प्रेम करता है तो पत्नी भी अपने सुख व निर्वाह के लिए पति से प्रेम करती है। ये सब प्रेम एक सीमित दायरे में बन्धे हैं, परन्तु गुरु-शिष्य का प्रेम ऐसा प्रेम नहीं है। यह प्रेम शिष्य को बंधन के सारे सांसारिक दायरों से पार होने में मदद करता है। गुरु शिष्य को आत्मिक दृष्टि से देखते हैं। उनको शिष्य से कोई स्वार्थ नहीं होता है। वे शिष्य के सारे दुःखों का मूल उस के अज्ञान पर कुठाराघात करके उसे परम पद में स्थित कर देते हैं। शिष्य कहता है—

'सत्गुरु मेरा शूरमा करे शब्द की चोट,
मारे गोला प्रेम का, हरे भरम की कोट।'

मेरे सद्गुरु बड़े शूरवीर हैं। वे प्रेममय शब्द रूपी गोला फेंककर चोट करते हैं और अज्ञान का कोट उस गोले से तहस नहस कर डालते हैं। भ्रम हट जाने से शिष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

जगत में सबके जीवन में दुःखभरे प्रसङ्ग आते हैं। उनसे खिन्न नहीं होना चाहिए। वे संसार का असारपना दिखलाने के लिये आते हैं। हमारे कई काम सफल नहीं होते तो हमें दुःख होता

है। यह असफलता हमें यह बतलाती है कि पूर्ण सफलता इधर विषयों की प्राप्ति में नहीं है, अपने स्वरूप में है। बाहर मत दौड़ो, अपने स्वरूप की ओर बढ़ो। उसी में सच्चा सुख है। दुःख हमें इसी बात की प्रतीति कराने के लिये आते हैं। संसार में सबसे व्यवहार करो मगर यह समझकर करो कि सब चला चली का मेला है, सब सपना है। स्वप्नवत् सब बीत जाने वाला है। संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है। सुख-दुःख आएगा और जाएगा, मान—अपमान की चोटें पडेगी और मिटेगी। यह सब देह व मन-बुद्धि से संबंध रखते हैं, उन्हीं के धर्म हैं। मुझे उनसे क्या ! मैं तो अपने स्वरूप में रहूँगा।

साधक अपने मन को समझाएँ—हे मन ! तू हर हाल में मस्त रह। तू अनुकूल परिस्थिति से राजी और प्रतिकूल परिस्थिति से दुःखी क्यों होता है ? प्रतिकूल परिस्थिति में भी खुश रह ! तू अपनी-अपनी ही चलाना चाहता है। तू दूसरोंकी नहीं मानता तो दूसरों को अपनी इच्छा मनवाने की हठ क्यों करता है ? यह हठ ही तेरे दुःख का कारण है। यह चाहिये और वह चाहिये, ऐसा मिले तो ठीक और ऐसा नहीं मिला तो ठीक नहीं, ऐसा हठ करके तू अपने आपको क्यों जानबूझ कर दुःखी करता है ? जो मिला है वह ठीक ही मिला है, उसीमें राजी रह।

राजी हैं जिसमें तेरी रजा है,
हमारी न आरज़ू है न जुस्तजू।

हे मन ! बस, तू ऐसा बन जा !

यह शरीर मैं नहीं हूँ । मैं तो असंग आत्मा हूँ । शरीर तो मेरा उपकरण मात्र है । मेरा शरीर कहीं भी हो, किसी भी अवस्था में हो, परन्तु मै अपने स्वरूप में रहूँ । सर्दी गर्मी शरीर को लगती है, सुख-दुःख मनको होता है; मैं इन सबसे परे हूँ ऐसा चिन्तन हर समय हम करते रहें । हमें फुर्सत मिलेगी तो भगवान का भजन करेंगे ऐसा नहीं । इधर उधर अमथाभाई, गेलाभाई की गप्पें सुनने में तो हम घंटों गुजार देते हैं, परन्तु जिस रास्ते पर चलने से सच्ची शान्ति मिलती है उस तरफ हम ध्यान नहीं देते । धर्म केवल बातें करने की वस्तु नहीं है । धर्म अपने जीवन में, व्यवहार में उतारने के लिये है । हमें पूरी गीता याद हो मगर उसके अनुसार हमारा व्यवहार नहीं हो तो सब व्यर्थ है । कोई शास्त्रों का कितना ही बड़ा पण्डित हो मगर शास्त्रों के मर्म के अनुसार उसका जीवन ढला हुआ नहीं हो तो वह भले ही कितनी ही विद्वता से अपनी बात लोगों के सम्मुख रखें, उस का अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा लोगों पर । लोग उसकी बात सुन-कर उसकी विद्वता की प्रशंसा भी कर देंगे मगर अपने जीवन में उसकी बात लोग उतार पाएंगे, यह कहना कठिन है । जबकि सच्चे महापुरुष जो अनुभूति सम्पन्न हो, जिन्होंने परम तत्त्व का अनुभव किया हुआ है ऐसे महापुरुष यदि टूटी-फूटी भाषा में भी अपनी बात कहते हैं तो लोग तुरन्त मान जाते हैं । लोग उनके सम्मुख नतमस्तक हो जाते हैं । उनकी बात का लोगों के हृदय

तक प्रभाव पड़ जाता है, क्योंकि वह बात महापुरुष की अनुभूति से ओत प्रोत होती है ।

ऐसे तत्त्वज्ञ महापुरुष की हम शरण ढूँढेगे, तभी हम अपना मनुष्य जन्म सार्थक कर पाएंगे । हम धन्धा करना जानते हैं, दुकान चलाना जानते हैं, कोर्टों में वकील बनकर झूठ को सच और सच को झूठ सिद्ध करना जानते हैं, हम बड़े बड़े जहाजों द्वारा पानी पर चलना और आकाश में उड़ना जानते हैं, बहुत कुछ हम जानते हैं परन्तु यदि संसार सागर से तरना नहीं जानते तो सब व्यर्थ हो जायगा । हम रुककर अपनी स्थिति पर एकबार विचार करें कि हम किधर जा रहे हैं ? ऐसा न हो कि हम गफलत में चलते ही चले जायं और बिना मन्ज़िल प्राप्त किये ही अपना सारा जीवन खो दें । हम अपने मन को समझाएँ कि हे मन ! कहाँ तो वह तेरा आनन्दमय आत्मस्वरूप है उस तरफ तो तू ध्यान नहीं देता और संसार की असार वस्तुओं में सुख ढूँढ रहा है । तेरी संसार से आसक्ति छूटती नहीं । तू है तो शहंशाह, राजाओं का राजा और असार संसार के तुच्छ विषयों में अज्ञान के कारण आसक्ति करके दीन-हीन बना हुआ है । तुझे इतने समय से समझा रहा हूँ फिर भी तुझमें अपने आत्मदेव को पाने के लिये इन्तजारी-बेकरारी पैदा नहीं हुई ? संसार की तुच्छ चीजों के लिये, धन के लिये, यश के लिये, सत्ता के लिये तो तू कितना बेचैन रहता है और अपने वास्तविक स्वरूप को जानने के लिये, अपने प्यारे के

लिये, जिसके लिये वास्तव में बेचन होना चाहिये उसके लिये बेचैन नहीं होता ! यह कैसी लज्जाजनक बात है ! दो रोटी कम मिले या दो घंटे नींद कम मिले तो उसके लिये तू तड़फता है पर जो प्यारा है, सदैव तुम्हारा है–स्वयं आनन्दका भण्डार है उसके लिये तू अपने अन्दर तड़फ पैदा नहीं करता ? जो और बातोंकी चिन्ता करता है वह मूढ है । जो आत्मदेव को पाने की चिन्ता करता है वही समझदार है, वही धीर है, वीर है । अतः हे मन! अब तू बाकी सब क्षणिक सुख देनेवाले आकर्षणों की तरफ ध्यान न देकर अपने आत्म-स्वरूप में स्थित होने का प्रयास कर । इसी में तेरी समझदारी है , तेरी धीरता और वीरता है ।

इस प्रकार साधक आत्म चिन्तन करता हुआ अपने साधना मार्ग में आगे बढ़े तो वह शीघ्र अपने लक्ष्य पर पहुँच जाएगा ।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

भजन

केही विध तोही समझाना, रे मन,
केही विध तोही समझाना !

शास्त्र कहत नित्य, स्मृति कहत नित्य धर्म कहत पुराना;
चारों वेद पुकारे जाकुं, ता पद क्युं बिसराना ?
रे मन........

नाम रूप दृश्य नाशवंत है, यां में सार क्या जाना ?
सच्चिदानन्द में ठरिये नित्य, मिथ्या भास तजी नाना ।
रे मन........

रागद्वेष निन्दा अरु स्तुति, मान और अपमाना;
इन सबको जो समकर जानो, सब तुम तत्त्व पिछाना ।
रे मन........

वेद वाक्य गुरुवाक्य वचन में, अनुभव आप मिलाना:
सहज समाधि लागी नानक मिट गया आना जाना ।
रे मन........

ॐ

ईश्वर के मार्ग पर चलना है तो विघ्नों की परवाह नहीं करें—

८-८-७६.
रविवार

दोपहर के साढ़े ग्यारह बजे हैं। सत्संग भवन में जिज्ञासु भक्त स्वामीजी के मधुर वचनामृत का पान कर रहे हैं।

स्वामीजी–

जगत में सदियों से भटकता मनुष्य जब तक जगत को सत्य मान कर चलेगा तब तक वह अशान्त ही रहेगा। जब तक वह जगत की वस्तुओं में, घटनाओं में सत्यबुद्धि रखेगा, उनके मिथ्यात्व को नहीं समझेगा, क्या सत्य है क्या असत्य है इसका तात्विक बुद्धि से विचार नहीं करेगा तब तक वह सुख-दुःख रूपी जगज्जाल में भटकता रहेगा। उसके दुःखों का कभी अन्त नहीं आयगा। जब तक उसकी बुद्धि जल की तरंगों व बुदबुदों को पृथक समझने की रहेगी, उनके नाम-रूप को ही सत्य मानने की रहेगी तब तक वह समुद्र के पानी को नहीं जान सकेगा। जब तक घड़े के नाम व रूप में ही दृष्टि रहेगी तब तक उसे घड़े की रग-रग में व्याप्त मिट्टी नजर नहीं आयगी। जब तक स्वर्ण के गहनों के नाम रूप को वह सत्य मानेगा तब तक 'यह सब तो वस्तुतः स्वर्ण है, यह

गहने तो नाम और रूप है, जो मिथ्या है, इसका ज्ञान उसे नहीं होगा।

बाजीगर को बाजी सब देखते हैं, बाजीगर को देखने की तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता। बाजी तो खत्म हो जाती है। बाजी शुरू करने से पूर्व भी बाज़ीगर था, बाजी चल रही होती है तब भी बाज़ीगर है, बाजी खत्म हो जायगी तब भी बाज़ीगर रहेगा। बाजीगर से ही बाज़ी चल रही है, वह नहीं हो तो बाजी नहीं है, बाजी का अस्तित्व ही नहीं है। वैसे ही मनुष्य के आत्म-स्वरूप से ही यह सब संसार है। यह उसी की निर्मिति है, उस अपने आत्मस्वरूप को वह भूला बैठा है और अपने ही द्वारा निर्मित (स्वप्न का निर्माण करने वाले स्वयं स्वप्नद्रष्टा की तरह) इस संसार को वास्तविक मानकर उसमें भटक रहा है। अपने आत्मस्वरूप को जानने का प्रयास न करके इस अपने ही द्वारा निर्मित माया मय संसार में सुख ढूँढने का असफल प्रयास कर रहा है। जब तक मिथ्या को सत्य जानने का भ्रम वह अपने में से नहीं निकालेगा तब तक वह सुख के लिये कितना ही भटके, कितने ही प्रयास करे, तब तक वर्षों निकल जाय-सदियाँ बीत जाय उसे सुख नहीं मिल सकता, उसे शान्ति नहीं मिल सकती, वह अशान्त ही बना रहेगा।

मन में जैसी वासनाएँ होती हैं-जैसी मान्यताएँ होती हैं, जैसे संस्कार होते हैं, जैसी भावना होती है वैसा ही संसार नजर आता

है। एक ही व्यक्ति है, परन्तु उसके प्रति यदि अच्छा भाव है तो वह हमें मित्र नजर आता है और बुरा भाव है तो वही व्यक्ति शत्रु नजर आता है। व्यक्ति वही है, हमारे भाव एवं संस्कार उसमें शत्रु–मित्र बुद्धि करा देते हैं।

लोग सन्तों के पास कुछ न कुछ अपने स्वार्थ लेकर जाते हैं। कुछ दिन तक श्रद्धापूर्वक जाते रहते हैं। संत ईश्वरी पैगाम देते हैं। वे क्षुद्र, नश्वर वस्तुएँ नहीं, शाश्वत् अमर तत्व का ज्ञान कराना चाहते हैं। वे उसे क्षणिक सुख नहीं, ऐसा सुख जो कभी खत्म न हो देना चाहते हैं, खुले हस्त बाँटना चाहते हैं इसोलिये थोड़ा विलम्ब करते हैं। अमूल्य धन के लिये विलम्ब होना स्वाभाविक ही है लेकिन लोग उनकी इस सदिच्छा को-अपने प्रति उनकी अपार कृपा को नहीं समझ पाते। अल्पमति के कारण वे अपना वास्तविक लाभ नहीं समझ पाते। उनकी मूढता उन्हें दूर ले जाती है। उनका क्षुद्र स्वार्थ, उनकी क्षुद्र वासना जब पूरी नहीं होती तो वे अपना धीरज खो बैठते हैं, उनकी श्रद्धा टूट जाती है। फिर कुछ समय पूर्व जिन संत के पैरों में अपना माथा झुकाते रहे हैं उन्हीं के ऊपर कीचड़ उछालते नहीं चूकते।

यह उनका दोष नहीं है। यह निंदा उनके मन में बैठा उनका क्षुद्र स्वार्थ, उनकी अपूर्ण वासना करवाती है। जीव है तो शिव पर उसकी वासना उसे दैत्य बना देती है। वह वासना संत असंत कुछ नहीं देखती और किसो को भी निन्दा करने को मनुष्य को बाध्य कर देती है।

वशिष्टजी महाराज कहते हैं–हे रामजी! जब मैं मार्ग से गुज़रता हूँ तो मूर्ख लोग मेरे लिये क्या क्या कहते हैं, वह सब मुझे ज्ञात है, परन्तु मेरा दयालु स्वभाव है इस कारण मैं उन्हें कुछ नहीं कहता।

बड़े बड़े सन्तों को भी लोगों ने निन्दा किये बिना नहीं छोड़ा लोगों ने कबीर की निन्दा की, महाप्रभु चैतन्य की निन्दा की, गुरु-नानक की निन्दा की। दुर्जनों का स्वभाव होता है दूसरों में दोष दर्शनका। मगर संत की निंदा बहुत बड़ा पाप है। नानक साहब कहते हैं।

सन्त का निंदक महा हत्यारा
सन्त का निंदक परमेश्वर मारा
सन्त के निंदक की पुजे न आस
संत का निंदक सदा निराश

(सुखमनी)

कुछ लोग संतों की अज्ञानवश बडी निन्दा करते हैं परन्तु सन्त उनके प्रति कभी मन में दुर्भाव नहीं लाते। वे सबको क्षमा करते हैं और हाथी की चाल चलते रहते हैं—

'हाथी चाल्या बाजार में कुत्ता भूसे हजार
साधुन को दुर्भाव नहीं, जब निन्दे संसार।'

सन्त को पता नहीं रहता हो कि हमारी निन्दा हो रही है, ऐसी बात नहीं है। वे सब जानते हैं मगर वे उनके दोष नहीं

गुण की तरफ देखते हैं । येन केन प्रकारेण उसका भला हो ऐसा ही सन्त करते हैं । संतों का स्वभाव बर्फ की तरह शीतल होता है । जैसे बर्फ कहीं भी रखो ठंडक ही देता है वैसे ही संत कहीं भी हो वे शीतलता ही देते हैं । उनको देखकर ही सज्जनों के हृदय में एक अलौकिक शान्ति छा जाती है ।

कहते हैं एक बार श्री रामकृष्ण परमहँस के पास बढिया मौजरी एवं चाँदी से जड़ी एक छड़ी पण्डितजी ने देखी । उनके मन में यह भाव आया कि देखो, ये संत हैं फिर भी इनको ऐसी बढ़िया चीजों में लगाव है । परमहंस उनका यह भाव ताड़ गए । वे उससे भी बढिया जूतियाँ और छडी की ओर इशारा करते हुए बोले—'अब तो ये दूसरी नई प्रयोग में लाएंगे' ।

(सुनकर लोग हँस पड़ते हैं ।)

सभी लोगों को खुश नहीं किया जा सकता । मनुष्य का स्वभाव ही है दूसरों में दोष देखने का ।

तो लोगों को खुश करना बड़ा मुश्किल है । लोगों के कहने से क्या सन्त खाना न खावें या कपड़े नहीं पहने ? प्रारब्ध वेग से ज्ञानी महापुरुषों को भी लेना-देना, व्यवहार करना पड़ता है । वे यह सब नहीं चाहते । यह सब करते हुए भी उनको इनमें मोह नहीं होता । वे तो अपने आत्म नशे में मस्त होते हैं । बाह्य व्यवहार—काल में उनमें हमें लौकिकता नजर आती है, परन्तु अन्दर से उनको इनमें कोई लेप नहीं होता । अन्दर से तो वे अपने आत्मानन्द में मग्न रहते हैं ।

जब सन्त महापुरुष अपनी निन्दा की परवाह नहीं करते तो ईश्वर के रास्ते पर चलने से यदि साधक की निन्दा होती है तो वह क्यों परवाह करें ? एक शराबी शराब पीते समय न तो अपने कुटुम्बियों की परवाह करता है और न ही अड़ोसी पड़ोसी की । और हम तो भगवद्-रस रूपी असली शराब पीते हैं । लोग सिनेमा जाते हैं तब भी दूसरों के कहने की परवाह नहीं करते और हम सत्संग में जाते हैं तो परवाह करेंगे क्या ? लोग जो कुछ भी कहेंगे अपनी सीमित मन बुद्धि से ही तो कहेंगे ! अज्ञानी की वाणी में सार ही क्या है ? अज्ञानी के संग से अज्ञान ही हाथ लगेगा । विरोध तो होता ही है मगर उसमें जो अडिग रह जाता है वह आगे बढ जाता है और अपनी मंजिल पा लेता है ।

संसारी सिखा कर भी क्या सिखाएगा ? वह संसार का बन्धन ही तो पक्का करेगा ! बन्धनों से छुड़ा तो नहीं सकता न ? जिस फ्रेम में दादा फिट थे, उसी में पिता फिट हुए, उसी फ्रेम में पुत्र फिट हो जाता है और वह फ्रेम आगे से आगे बच्चों को, पुत्र-पौत्रों को फिट होने के लिए मिलती जाती है । हर पिता अपने पुत्र को वह फ्रेम पकड़ा देता है । पुत्र उसे पकड़ने से पूर्व विचार नहीं करता और फँसने के बाद निकल नहीं पाता, और अन्त में उसी फ्रेम को अपने पुत्र को फँसने के लिए विरासत में दे जाता है ।

एक ग्रामीण पैरों में चूँचर्रर-मर्रर की आवाज करने वाले जूते और माथे पर पगड़ी बान्धे एक जंगल से गुजर

रहा था। जंगल में कहीं से एक रीछ आया और उसने उस पर हमला कर दिया। ग्रामीण जरा हिम्मत वाला था। उसने रीछ के पंजे अपने हाथों से पकड़ लिये और गुत्थम-गुत्था शुरु हो गई। इस हाथापाई में उसके सिर की पगड़ी खुल गई और उसमें बंधे रोकड़े रुपये खननन्ऽऽ की आवाज करते हुए जमीन पर बिखर गए। अब स्थिति उसकी यह हो गई कि रीछ को छोड़ता है तो वह खाता है। इस आफत से कैसे पार पाया जाय? इधर-उधर दृष्टि घुमाई तो एक व्यक्ति नजर आया किसी खेत में काम करता हुआ। उसने उसे आवाज दी और युक्ति करके उससे कहा कि इन रुपयों को मत उठाना। ये तो मैंने रीछ से निकलवाए हैं। रीछ को जब हाथों से इस प्रकार पकड़ कर नचाते हैं तो यह रुपये गिराता है। तुमको यदि चाहिये तो तुम भी इसको ऐसे पकड़कर नचाओ और रुपये प्राप्त करो।

अज्ञान क्या नहीं करवाता? अज्ञान ने उस दूसरे अजनबी आदमी को भी रीछ पकड़वा दिया। पहले वाले ने रीछ उस दूसरे आदमी को पकड़ा दिया और 'जान बची तो लाखों पाये'-समझ [illegible] बहुत रुपये उठाए, कुछ वहीं छोड़े और वहाँ से ऐसा भागा कि पीछे मुड़कर भी नहीं देखा। अब यह बला उस अजनबी आदमी के गले में पड़ी तो उससे अपना पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो गया। उसने कोई तीसरा व्यक्ति ढूंढा और यह रुपये देने वाली मिथ्या बला उसके गले में डाल दी। इस प्रकार यह सिलसिला आगे से आगे चलता गया।

ऐसे ही हम बिना सोचे विचारे अपने बाप द्वारा पकड़ाए गए संसाररूपी रीछ को पकड़ लेते हैं, फिर उससे ऐसे उलझ जाते हैं कि बचने का कोई रास्ता नजर नहीं आता। जीवन उसके साथ गुत्थम–गुत्था में ही गुजर जाता है और वही संसार रूपी रीछ अपने पुत्र को पकड़ाकर चल देते हैं।

इसलिये कहा जाता है बार बार कि सत्संग अपने जीवन से न छूटे, गुरु के सान्निध्य से हम दूर न चले जायं। सद्गुरु के सान्निध्य में रहने से श्रेष्ठकर्म होते हैं, आचरण सुधरता है, पाप धुलते हैं, पुण्य बढ़ता है और हम साधना में आगे बढ़ते हैं। ईश्वर के रास्ते चलते समय यदि यह परवाह की कि लोग क्या कहेंगे तो रह जाएंगे। यदि सद्गुरु के प्रति अश्रद्धा हो गई, वह भले किसी भी कारण से हुई हो या संतों का सहारा छूट जाता है तो साधक न जीने के योग्य रहता है न मरने के। न इधर के रहते हैं न उधर के। इसलिये ईश्वर के मार्ग में बढ़ना है तो विघ्नों की परवाह नहीं करनी चाहिए। अपने मार्ग को अवरुद्ध मत होने दो। फिर यदि वह मां रोके अथवा बाप, भाई रोके अथवा बहन, पति रोके अथवा पत्नी, साधक किसी के रोके न रुके। यदि माँ रोकती है तो वह ध्रुव बन जाय, बाप रोके तो वह प्रह्लाद बन जाय, यदि पति रोके तो मीरा बन जाय, यदि भाई रोके तो वह विभीषण बन जाय और यदि पत्नी रोके तो रामतीर्थ बन जाय। कुछ

भी बनकर वह अपने प्रतिकूल वातावरण एवं व्यक्तियों में से अपना रास्ता निकाल कर आगे बढ़ता रहे ।

पत्थर को भगवान बनाना सरल है मगर मनुष्य को भगवान बनाना, नर को नारायण बनाना अत्यन्त कठिन है । बालक उपमन्यु व उसके गुरु आयोदधौम्य का आख्यान् आपमें से कईयों ने सुना होगा। उपमन्यु में कुछ ऐसी कमियाँ थी जिनके कारण वह अपना उत्थान नहीं कर पा रहा था और वे क्या कमियाँ थी वह गुरु अच्छी प्रकार से जानते थे । गुरुदेव ने देखा कि कुछ भी हो बहुत समय हो गया उपमन्यु को आगे बढ़ाना चाहिये, इसलिये उसको बुलाकर उन्होंने पूछा-'बेटा उपमन्यु ! तुम आजकल भोजन क्या करते हो ?'

उपमन्यु ने नतमस्तक होकर कहा 'गुरुदेव ! भिक्षा में जो प्राप्त होता है उसीसे अपना काम चलाता हूँ।'

गुरुदेव बोले-वत्स ! यह तो तुम ठीक नहीं करते । भिक्षा में जो मिले वह गुरु को समर्पित कर देना चाहिये । उसमें से यदि गुरु दें तो उसे ग्रहण करना चाहिये ।

अब उपमन्यु ने जो भी भिक्षा मांगकर लाता गुरु को अर्पण करना शुरु कर दिया । गुरु सारी भिक्षा रख लेते और उपमन्यु को कुछ नहीं देते। कुछ दिन बाद गुरु ने उसे फिर बुलाकर पूछा-'उपमन्यु ! तुम आजकल क्या खाते हो ?' उपमन्यु ने जवाब दिया-'गुरुदेव! मैं अपने लिये दूसरी बार भिक्षा मांग कर ले आता

हूँ ।' गुरुदेवने कहा, 'यह तो तुम अच्छा नहीं करते । गृहस्थों पर यह दूसरी बार मांगकर अधिक भार डालना उचित नहीं है । ऐसा मत किया करो ।'

उपमन्यु के लिये भोजन का यह रास्ता भी बन्द हो गया । कुछ दिन बाद फिर गुरुदेव ने उससे उसकी उदरपूर्ति का साधन पूछा तो उसने कहा 'गुरुदेव । मैं गायों का दूध पी लेता हूँ ।' गुरु ने कहा, 'यह भी तुम ठीक नहीं करते । बिना मुझसे पूछे गायों का दूध तुम्हें नहीं पीना चाहिये। उपमन्यु का दूध पीना भी बन्द हो गया। फिर भी गुरु ने देखा कि उपमन्यु का चेहरा ऐसा नहीं लगता कि वह भूखा रहता हो । उन्होंने पुनः उसे बुलाकर भोजन का हाल पूछा तो उसने कहा 'गुरुदेव ! बछड़ों के मुख से जो दूध के फेन गिरते हैं, उन्हें चाट लेता हूँ ।' गुरुदेव ने कहा-'बछड़े बेचारे स्वयं भूखे रहकर तुम्हारे लिये फेन गिरा देते होंगे। ऐसा करना तो तुम्हारा ठीक नहीं है ।'

गुरु कैसी कसौटी करते हैं ? क्या उनको उपमन्यु को भूखा रखने में आनन्द आता होगा ? नहीं, गुरु को अपने से भी अधिक चिन्ता शिष्यों की रहती है, लेकिन उन्हें तो शिष्य को आगे बढ़ाना होता है। कसौटी यदि न हो तो व्यक्ति के व्यक्तित्व की घड़ाई कैसे हो ? जो ऐसी परीक्षाओं में पास होते चले जाते हैं वे आगे बढ़ते जाते हैं । जो प्रतिक्रिया करते हैं, अपने आपको कसौटी पर कसाना पसन्द नहीं करते, अपनी मन-बुद्धि के प्रति-

कूल आई हुई परिस्थिति को स्वीकार नहीं करना चाहते वे वहीं रुक जाते हैं। वे मिट्टी ही बने रहते हैं, घड़ा नहीं बन पाते, क्योंकि वे कसौटी की चोटें सहना पसन्द नहीं करते।

उपमन्यु के उदरपूर्ति के सारे उपाय छिने जा चुके थे। निदान वह उपवास करने लगा। गायें चराते-चराते एकबार भूख सहन करना उसके लिये असह्य हो गया। भूख क्या नहीं कराती? 'बुभुक्षितः किं न करोति पापं'—भूख से पीड़ित उपमन्यु ने आक के पत्ते खा लिये। विषैले आक के पत्तों ने उसे अन्धा कर दिया और न देख सकने के कारण मार्ग में पड़ने वाले एक सूखे कुए में वह गिर पड़ा। सुबह जब गुरु को सब आश्रमवासी हमेशा की तरह प्रणाम करने गए तो गुरु को उनमें उपमन्यु नज़र नहीं आया। गुरुदेव के पूछने पर शिष्यों ने बताया कि कल गायें तो लौट आई थी मगर उपमन्यु लौटा ही नहीं था। अतः गुरुदेव कुछ शिष्यों को साथ लेकर उसे ढूंढने निकले। 'बेटा उपमन्यु....! उपमन्यु तुम कहाँ हो' पुकारते हुए वे जब उस कुए के पास पहुँचे तो कुए में से उपमन्यु ने जवाब दिया कि मैं इस कुए में गिर पड़ा हूँ। पूछने पर अन्धे होने की सारी बात जब गुरु को मालूम हुई तो उन्होंने उसे एक मंत्र बताकर देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों को बुलाने की आज्ञा दी। उपमन्यु के स्तुति करते ही अश्विनी-कुमार आ उपस्थित हुए। उन्होंने उसे एक पूआ बनाकर खाने को दिया मगर उपमन्यु ने

कहा—'बिना गुरुदेव की आज्ञा के मैं यह कैसे खा सकता हूँ ?' अश्विनीकुमार बोले—'बेटा! तुम संकोच क्यों करते हो ? तुम्हारे गुरु को भी एक बार हमने पूआ खाने को दिया था तो वे बिना अपने गुरु की आज्ञा के खा गए थे।' उपमन्यु बोला—'वे मेरे गुरु हैं। उन्होंने कुछ भी किया हो उससे मुझे क्या ? पर मैं तो बिना आज्ञा के यह स्वीकार नहीं कर सकता।' धन्य है उपमन्यु की गुरु भक्ति! इससे अश्विनीकुमार बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे समस्त विद्याएं बिना पढ़े आ जाने का आशीर्वाद दिया। उपमन्यु की तपस्या सफल हो चुकी थी। बाहर निकलने पर गुरु ने उसे हृदय से लगा लिया।

आयोदधौम्य जैसे नर से नारायण बनाने वाले तत्त्वनिष्ठ गुरु कहाँ मिलते हैं ? पत्थर कभी प्रतिक्रिया नहीं करता-वह मूर्तिकार की चोटें सहन कर लेता है और इसलिये मूर्ति बन जाता है। मिट्टी भी कुम्हार की चोटें सहन करके घड़ा बन जाती है, मगर मनुष्य बात बात में हर चोट पर प्रतिक्रिया करता है। तथाकथित गुरु तो बहुत मिल जाते हैं मगर ऐसे गुरु, ऐसे तत्त्वज्ञ महापुरुष जो मनुष्य को साधना मार्ग में आगे बढ़ाकर सत्य क्या है व मिथ्या क्या है उसे समझा दे, अपने आत्मस्वरूप का ज्ञान करा दे, उसे अपना आपा दिखा दे,-ऐसे महापुरुष मिलना उतना ही कठिन है जितना मरुभूमि में पानी मिलना कठिन होता है। ऐसे गुरु जब मिलते हैं तो वे साधक को कई प्रकार से टकोर कर, चोटें मारकर उसकी कसौटी करते हैं, उसे मजबूत करते हैं, योग्य

बनाते हैं, क्योंकि वे जो देना चाहते हैं वह कोई ऐसा वैसा पदार्थ नहीं है। शेरनी का दूध सोने के बर्तन में ही रखा जा सकता है। इसलिये अगर साधक ने साधना मार्ग में आगे बढ़ते समय लोगों की निंदा-स्तुति की परवाह नहीं की, गुरु में उसकी अनन्य श्रद्धा बनी रही और उनकी हर प्रकार की चोटें सहन करने में सफल हो गया तो वह गुरु की कृपा का सम्पूर्ण रूप से अधिकारी बन जायगा और लख–चौरासी के चक्कर से वह छूट जायगा। फिर उसी को बांधने वाली माया उसकी चेरी बन जायगी और जिस स्वरूप में ब्रह्मा, विष्णु व महेश स्थित हैं उसी आत्मपद में वह स्थित हो जायगा।

ॐ! ॐ! ॐ!!!

ॐ

ईश्वर सर्वत्र है मगर उसे देखने की आँख चाहिये,
उसके लिये हृदय में प्यास चाहिये –

२४.८.७६
मंगलवार

शाम के साढ़े चार बजे हैं। स्वामीजी आश्रम में गाय की रस्सी पकड़े हुए खुले बदन खड़े हैं। गाय अपना मुंह चलाती हुई उनकी ओर निहार रही है। आकाश का बादल सूर्य के सामने आ जाने से आश्रम में एवं आश्रम से काफी दूर तक छाया हो गई है। इस समय स्वामीजी को देखकर कोई भी अजनबी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि यही वे स्वामीजी हैं जिनसे आत्म-शान्ति की प्राप्ति के लिये इच्छुक जिज्ञासु एवं भक्त दूर दूर से आते हैं। कई बार तो स्वामीजी को इस स्थिति में न पहचान कर अनजान लोग आकर उन्हीं के सम्मुख सीधे पहुँच जाते हैं, तब स्वामीजी को विनोद करने का अच्छा अवसर हाथ लग जाता है। स्वामीजी उससे पूछते हैं कि कहो, कैसे आए? तो वह अपना स्वाभाविक उत्तर देता है–'स्वामीजी के दर्शन हेतु।' स्वामीजी उसको नदी किनारे एक साधक की कुटिया की तरफ इशारा कर देते हैं जिसमें लम्बी, धवल, प्रभावी दाढ़ी वाले एक वृद्ध साधक साधना

करते हैं। वहाँ वह जाकर उनको दण्डवत् प्रणाम करता है, थोड़ी देर वहाँ बैठता है। वे साधक उससे पूछते हैं,-कैसे आए, तो वह कहता है कि स्वामीजी, आपके दर्शन हेतु आए हैं। उधर जो आपके कोई शिष्य हैं उन्होंने हमें आपके पास भेजा है, तो वे साधक चौंक उठते हैं और उसे कहते हैं 'अरे, जिन्होंने भेजा है आपको, वे ही स्वामीजी हैं। उन्होंने विनोद में तुम्हें मेरे पास भेजा है। मैं तो उनका शिष्य हूँ। इस प्रकार जब उसे असलियत का पता लगता है तो वह आकर स्वामीजी के पैरों में गिर पड़ता है और स्वामीजी सहित अन्य साधक भी हँस पड़ते हैं।

कोई कैसा ही लौकिक दृष्टि से उच्च–पदस्थ अधिकारी आश्रम में स्वामीजी के दर्शन हेतु आया हो; परन्तु लेखक ने स्वामीजी को कभी उसके कारण अपने वस्त्र ठीक करते या स्वयं को ठीक दिखाने का प्रयास करते नहीं देखा। उनकी अपनी मौज ही विलक्षण है। एक बार तो वे एक फटा हुआ बनियान पहने कुटिया की चहारदीवारी के ऊपर बैठे थे। वहीं से उन्होंने जिज्ञासु भक्तों को अपने अमृत वचनों का प्रसाद दिया। उसी समय एक फोटोग्राफर ने उनका फोटू खींच लिया। वह फटे बनियान वाला फोटू आज कई भक्तों के घरों मे देखा जाता है। उस चित्र को देख कर अजनबी व्यक्ति यही समझेगा कि कोई गरीब–दीन व्यक्ति होगा जिसको ठीक से बनियान भी उपलब्ध नहीं है। उस व्यक्ति

को कौन समझाएं कि कपड़ों से दीन दीखने वाला वह व्यक्ति कितने बड़े दिव्य-अलौकिक-अटूट धन का स्वामी है!

अभी एक कार से उतर कर तीन व्यक्ति आए हैं और स्वामीजी को झुककर प्रणाम करते हैं। इनमें एक एडवोकेट है, एक एक्स (भूतपूर्व) मिनिस्टर है एवं एक समाज के प्रतिष्ठित व्यापारी व कार्यकर्ता है। वे स्वामीजी को बता रहे हैं कि हमारी बहुत समय से इच्छा थी आपके दर्शन की, आज सफल हुए हैं। स्वामीजी प्रसन्न मुद्रा से उन्हें पानी पिलाने के लिये एक सेवाधारी को कहते हैं। थोड़ी देर में सभी सत्संग भवन में आकर बैठ जाते हैं। सहज बातचीत प्रारंभ हो जाती है।

एक्स मिनिस्टर (जो पूर्व परिचित हैं)–स्वामीजी! ये जो मेरे साथ आए हैं हमारे मित्र एडवोकेट हैं। बड़े जिज्ञासु हैं। इन्होंने महापुरुषों के संग में रहकर कई आध्यात्मिक शास्त्रों का अध्ययन किया है। अभी ये ज्ञानेश्वरी गीता के अध्ययन में लगे हैं। दूसरे, ये हमारे नगर के बड़े प्रतिष्ठित व्यापारी एवं कई सामाजिक संस्थाओं के प्रमुख हैं। इन्होंने मेरे नाक में दम कर रखा था, आपके यहाँ आने के लिये।

एडवोकेट–स्वामीजी! हम इनको यही कहते थे कि आप कई बार आश्रम में सात-सात दिन तक रहकर अमुल्य धन इकट्ठा करके ले आते हो और हमें दिखाते तक नहीं, ऐसा हम सहन नहीं कर सकते। आज ये पकड़ में आ गए और हमारे बड़े धन्य भाग

हैं कि 'आपश्री' के यहाँ आते ही दर्शन हो गए अन्यथा हमें यह डर था कि शायद आप बाहर न पधार गए हों।

स्वामीजी (मुस्कुराते हुए विनोद में)–चलो, आपने हमको यहाँ बैठे दर्शन दिये। यही हमारा सद्भाग्य है।

एडवोकेट–(हाथ जोड़कर) स्वामीजी! यह आप क्या कहते हैं! यह तो आपका बड़प्पन है। दर्शन तो हम आपके यहाँ करने आए हैं। यहाँ आकर हम बड़े कतार्थ हुए हैं।

स्वामीजी–संत ज्ञानेश्वर योगी भी थे और ज्ञानी भी। अतः ज्ञानेश्वरी गीता वास्तव में अध्ययन योग्य है। उसमें छठा अध्याय योग साधक के लिये तो विशेष महत्वपूर्ण है। उसमें कुण्डलिनी योग के बारे में बहुत सुन्दर ढंग से व्याख्या की गई है। यह योग बहुत प्राचीन है। बीच में जरा ढाक दिया गया था। अब पुनः प्रकाश में आया है।

जब कुण्डलिनी जागृत होती है और साधक गहरे ध्यान में उतरता है तब उसे अनुभव होना शुरु होता है कि मैं अलग हूँ और यह मेरी देह अलग है। इसमें आसक्ति दुःख का कारण है।

वैसे भी थोड़ा बुद्धिपूर्वक कोई विश्लेषण करे तो मैं शरीर हूँ, यह बात सिद्ध नही होती। यदि किसी को पूछा जाय कि तुम कौन हो तो वह अपने साढ़ेतीन हाथ वाले शरीर की ओर अंगुली उठाएगा। उसमें उससे फिर पूछा एक एक अंग पर अंगुली रखकर तो बात स्पष्ट हो जायगी। यदि वह बालों पर अगुंली रखे तो

बाल तो हम कई बार कटा चुके हैं। हर बार आते रहते हैं और उनकी हमें स्मृति है जो कट कर दूर हो चुके हैं। ऐसे ही अलग अलग अंग भी हैं परन्तु उनका भी स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वे भी सामूहिक रूप से मिलकर शरीर है। अन्य कई पदार्थ भी हैं जो मल-मूत्र, पसीना, थूक, कफ, पित्त आदि के रूप मे त्यागे जाते रहते हैं और त्यक्त होते ही गन्दगी बन जाते हैं; वह भी हम नहीं हैं। शरीर के छोटे छोटे कोषाणु भी हर क्षण पुराने खत्म होकर नये बनते रहते हैं और डॉक्टर बताते हैं कि सात वर्ष मे शरीर पूराही बदल जाता है। बुद्धि भी बदलती है। बचपन की मान्यताएं बुद्धि की युवावस्था में बदल जाती हैं और युवावस्था की सारी मान्यताएँ बुढ़ापे में बदल जाती हैं। मन में भी प्रतिक्षण नये नये विचार आते और जाते रहते हैं। तो शरीर के कोषाणु बदल जाते हैं, बुद्धि की मान्यताएँ बदल जाती हैं, विचार बदल जाते हैं, बचपन-जवानी-बुढ़ापे की अवस्थाएँ बदल जाती हैं फिर भी वह कौन है जो इन सब परिवर्तनों में सदा एकसा रहता है, जो इन सबको बदलते देखता रहता है। कभी कभी बहुत कष्ट पड़ने पर हम कहते हैं–'इससे तो मर जाऊँ तो अच्छा'। इससे सिद्ध होता है कि मरने के बाद भी अमर रहकर सुखी होने वाला कोई न कोई है। यदि शरीर हम होते तो शरीर तो नष्ट हो जाता है मगर उसके बाद भी जो सुखी होने की आस करता है, भूत–भविष्य वर्तमान, बचपन-जवानी-बुढ़ापा, जागृत्-स्वप्न और सुषुप्तावस्था को

आनन्द बाहर नहीं है। आनन्द-स्वरूप तो हम स्वयं हो हैं। यह आनन्द, यह शाश्वत् सुख ढूंढने की इच्छा हमारे उस स्वरूप के कारण हो है। जन्म-मृत्यु आदि दुःखों से छूटूँ और शाश्वत् सुख पाऊँ यह इच्छा हरेक में स्वभाव से हो है। कोई उसे नहीं बताता कि तुम सुख ढूँढो। कही भो देखो-मोटरवाला, दुकान वाला, फेक्टरी वाला, बंगला वाला, मजदूर, कर्मचारी, भिखारी, सेठ सब सुख के लिए ही दौड़ रहे हैं।

मैं यह करूँ-मैं वह करूँ, मैं ऐसा बनूँ-मैं वैसा बनूँ तो सुखी होऊँ-यही अज्ञान है। इस अज्ञान को ही हटाना है। केवल दृष्टि बनानी है, परमात्मा तो स्वतः उपलब्ध है। जैसे गाड़ी के ड़िब्बे में एक साथ बैठे हैं, घण्टों से बैठे हैं, एक दूसरे को देखते हैं, आपस में व्यवहार करते हैं मगर फिर भी दर्शन का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं क्योंकि वह दृष्टि नहीं बनी है। दृष्टि बनेगी, अज्ञान का पर्दा हटेगा तभी लाभ हो सकेगा। ऐसे ही हर जीव को हमेशा भगवान का दर्शन होता है। वह हमेशा उसके साथ में है फिर भी उसके दर्शन का लाभ वह नहीं ले पाता, क्योंकि वैसी दृष्टि नहीं बनी है, बीच में अज्ञान का पतला पर्दा है। दर्शन होते हुए भी उसके लिए अदर्शन है।

एक बार मेरा आणन्द (शहर) में एक डाक्टर के यहाँ जाने का संयोग बना। डाक्टर की पत्नी खूब ध्यान भजनकरती-थी। लालजी महाराज (अपने मित्र संत) से उसने मेरे बारे में

कुछ सुन रखा था और उन्होंने ही मुझे एक बार वहाँ जाने के लिए बोला था। जब मैं उनके बंगलेपर पहुँचा तो डॉक्टर की पत्नी ने खूब श्रद्धा से मेरा स्वागत किया। उसने कमरे को बहुत मेह-नत करके सजाया था। उसने कहा-'एक बार मेरे घर में पगले करके पवित्र कर दो।' मैंने कहा, 'यह सब तो ठीक है लेकिन जरा यह बताओ कि तुमको मेरे यहाँ आने के बारे में किसने बताया?' वह बोली, 'आज सुबह ही ४ बजे जब मैं ध्यान में बैठी थी तो आपको इसी शुभ्र-वेश में मैंने ध्यान में देखा। इससे मुझे यह दृढ धारणा हो गई कि आज आप इधर अवश्य पधारने वाले हैं। इसलिए पहले से सब तैयारी करके इन्तजार में यहाँ बैठी थी।

इसके बाद मैंने उससे साधना आदि के बारे में बातचीत की। साधना में आनेवाली कठिनाईयों पर चर्चा हुई तो उसने पूछा-'आप एक बात बताइये कि ईश्वर सर्वत्र है?'

मैंने कहा—'हाँ! ईश्वर सर्वत्र है।'

उसने फिर पूछा-'आप निःशंक होकर कर रहे हैं?'

मैंने फिर उसे गीता का श्लोक कह सुनाया—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥६१॥
(अ० १८)

के कारण कुछ लोग ऐसे चमत्कार प्राप्त करके भटक जाते हैं, क्योंकि उनकी वासनाएं बनी रहती हैं, अतः आगे नहीं बढ़ पाते।

योग की बहुत बड़ी महिमा है। प्राचीन यौगिक ऋषियों के कारण आज का सामान्य योगी भी पूजा जाता है। वास्तविक योग की ऊँचो भूमिका तो और बात है। उस भूमिका पर तो कोई विरला ही पहुँच पाता है।

सामाजिक कार्यकर्ता–स्वामीजी ! हम तो कईयों के पास गए, परन्तु जैसी शान्ति चाहते थे नहीं मिली। हमारा आध्यात्मिक उत्थान क्यों नहीं हो पाता ? चाहते हैं संसार छोड़ना, पर बार बार संसार ही अच्छा क्यों लगता है ?

स्वामीजी–आग लगाने वाला हो और आग नहीं लगे, यह हो नहीं सकता। खैर ! हमारी तो यह पहली ही मुलाकात है।

सामाजिक कार्यकर्ता–लेकिन हम तो स्वामीजी पहली ही मुलाकात में बहुत कुछ प्राप्त कर जाना चाहते हैं।

स्वामीजी (मुस्कराकर)–हाँ, आपकी यह जिज्ञासा भी ठीक है। परन्तु यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि इसका माप बाहर के किसी माप (पैमाने) से निकाल सकें। वैसे आपने जितनी भी पुस्तकें पढ़ी, सन्तों का संग किया वह सब व्यर्थ नहीं गया है। उसी के प्रयास से हम आगे की स्थिति में पहुँच पाते हैं। पाल ब्रिन्टन को रमण महर्षि ने कहा था कि 'तुम यहाँ तक बहुत घूमने के बाद पहुँचे हो तो यह तुम्हारा वैराग्य तीव्रतर होने का द्योतक है। अन्यथा तुम यहाँ

तक पहुँच ही नहीं पाते। पहले का घूमना तुम्हारा व्यर्थ नहीं गया है, जैसे कोई पत्थर २० चोटों के बाद इक्कीसवी चोट से टूटा तो वह इक्कीसवीं अकेली चोट से नहीं टूटा है। उसके पहले की २० चोटों ने उसे शनैः शनैः कमजोर बनाया तब इक्कीसवी चोट कामयाब हो सकी है।'

हमारा मन बहुत चञ्चल है। वह वायुवेग से दौडता है। उसको काबू करना बहुत कठिन है, फिर भी असम्भव नहीं है। अभ्यास से वह काबू में आ सकता है। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं–

असंशय महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥
(अध्याय-६)

'हे महाबाहो ! निःसन्देह मन चञ्चल और कठिनता से वश में होने वाला है, परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! अभ्यास अर्थात् स्थिति के लिये बारम्बार यत्न करने से और वैराग्य से वश में होता है, इसलिये इसको अवश्य वश में करना चाहिये।'

होता क्या है कि हम साधना के प्रति एकनिष्ठ नहीं होपाते। मुझे ऐसा करना है फिर वैसा करना है, इसमें लगे रहते हैं। स्वामी रामतीर्थ कहते थे–मनुष्य वासना रूपी पत्थर बाँध कर समुद्र में तरने जाते हैं। यह कैसे संभव हो सकता है ?

एक वैद्य कहा करने थे—तोला दवाई और सेर खटाई हो तो असर कैसे होगा ? बीमारी कैसे जायगी ? यदि तत्वज्ञ महापुरुष का मार्ग-दर्शन हो और निर्देश अनुसार साधना चलती हो तो निश्चित् रूप से परिणाम आयगा। मैं कहता हूँ-९० दिन तक साधक दो घंटे नित्य प्रति व्यवस्थित साधना करें जैसा यहाँ साधक आश्रम एवं घरों पर करते हैं और परिणाम नहीं आवें तो समय बैक गैरन्टी (Time back guarantee)

(स्वामीजी के साथ सभी हँस पड़ते हैं)

ये आपके सामने चन्दी राम (एक साधक) बैठा है। इनका इतिहास आप सुनो तो आश्चर्य चकित हो जाओ। क्यों साहेब ! आप को तो मालूम ही है ?

मिनिस्टर (हाथ जोड़कर)–हाँ स्वामीजी ! इनको कौन नहीं जानता ! अपने नगर के नगर-सेठ थे ये। अच्छा पैसा, अच्छा ऐशो आराम ! अत्यंत विलासी जीवन ! पत्नी के विना कभी रह नहीं सकते थे। फिर भी शांति नहीं मिली और अब आपके चरणोंमें इनकी साधना अपूर्व फलवती सिद्ध हुई है। अब सब कुछ इन्होंने छोड़ रखा है। संसार की तरफ स्वतः इनका खिचाव कम हो गया है। मैं तो समझता हूँ, इनकी साधना की इतनी उच्च भूमिका है कि शायद ही आस-पास के इलाके में योग की ऐसी भूमिका पर कोई साधक हो। मेरे को एक बार योग का एक अनुभव इन्होंने बताया था, उसके आधार पर मैं कह रहा हूँ।

सभी चन्दीराम के चेहरे की तरफ देखने लगे हैं। उनके चेहरे पर लम्बी-श्वेत-घनी दाढ़ी शोभायमान है। चेहरे की गम्भीरता उनकी उच्च साधना का बोध करा रही है। इनके साधनामय स्वस्थ शरीर को देखकर आज कोई नहीं कह सकता कि इनका शरीर पहले अनावश्यक चर्बी से मोटा और जीवन इतना विलासी रहा होगा।

स्वामीजी—यह तो आपके सामने बैठा है इसलिये कह रहा हूँ, बाकी और भी ऐसे कई साधक हैं जिन्होंने योग साधना करके अपना जीवन पलटा है। तो रंगाने की इच्छा हो व रंगने वाला भी हो और रंग न लगे-ऐसा हो नहीं सकता। लेकिन हम सोचते हैं, घर का सब काम-काज पताकर (हल करके) फिर भजन करूँगा तो ऐसा कभी हो नहीं सकता। स्वामी रामतीर्थ एक घुड़सवार का उदाहरण देते हैं।

एक यूरोपीयन घुड़सवार हिन्दुस्तान में एक रहट (कुआ जिसमें से एक चक्र द्वारा बैल जोतकर पानी निकाला जाता है) पर घोड़े को पानी पिलाने ले गया। रहट चल रहा था और उस की आवाज आ रही थी। घोड़ा उस आवाज के कारण चौंककर पानी नहीं पी रहा था। सवार ने कहा–'भाई जरा यह आवाज बन्द करो तो घोड़ा पानी पी ले।' रहट वाले ने रहट बन्द कर दिया। आवाज बन्द हो गई मगर साथ ही पानी भी बन्द हो गया। सवार ने कहा– भाई मैंने आवाज बन्द करने के लिये

उसका उपयोग तुच्छ राज्यकार्य में हो होता है । मैं अपने अमूल्य जीवन का उपयोग ऐसे त्यागी महापुरुषों के दर्शन तक में नहीं कर पाता, उनका सान्निध्य नहीं कर पाता ! कैसा मेरा दुर्भाग्य है ! यही विचार कर मैं रोया।

फिर कुछ रुककर युधिष्ठिर ने पूछा– हम तो रोये, परन्तु भगवान आप तो त्रिलोकी नाथ हैं, आप क्यों रोये ?

श्री कृष्ण बोले– मुझे इसलिए रोना आया कि अब कलि काल आयगा। कलिकाल में तो ऐसे त्यागी तपस्वी महात्मा मिलना दुर्लभ होंगे और उनकी महिमा जानने वाले ऐसे महान् धर्मात्मा राजा भी दुर्लभ होंगे। यही विचारकर रोना आता है।

ऐसे सच्चे संत संसार से दूर रहना चाहते हैं। क्योंकि उनके पास लोग नश्वर और तुच्छ वस्तुओं की मांग करते हैं। यह ऐसा है जैसे किसी जवेरी के पास जिसके पास देने के लिए हीरे जवाहरात और सोना चाँदी है, चार पैसे की सेव गांठिया और चटनी की कोई मांग करे। यदि उनके (संत) पास आत्मज्ञान केलिये कोई आवे तो अलग बात है। ऐसे संत न तो प्रशंसा के भूखे हैं न प्रतिष्ठा के। उनके लिए प्रतिष्ठा शूकरी-विष्ठा समान है।

ईश्वर के दरबार में लौकिक प्रतिष्ठा आदि की कोई कीमत नहीं है। और वे संत संत भी नहीं हैं जो प्रतिष्ठा की चाह रखते हों। ऐसे ही महान् संत हमें परमात्मा से मिला सकते हैं। परमात्मा से मिलने के लिये हृदय की सच्ची प्यास चाहिये। ढोलक मजीरों की आवाज वहाँ तक नहीं पहुँच सकती मगर प्यासे एवं पवित्र हृदय की आवाज वह सुन लेता है। यदि हम उसके लिए अपने हृदय में ऐसी प्यास जगा सके, अपना हृदय सिंहासन उसके विराजने योग्य पवित्र बना सके तो फिर वह दूर नहीं है। वह स्वतः अपने आपको प्रकट कर देता है, क्योंकि वह तो हमारा अपना स्वरूप ही है।

"तुम अपने ऊपर अविश्वास कभी मत करो। तुम इस जगत में सब कुछ कर सकते हो। कभी भी अपने को दुर्बल मत समझो। सभी शक्तियाँ तुम्हारे भीतर विद्यमान हैं!"

—ॐ! ॐ!! ॐ!!!—

ॐ

हमें आत्मसाक्षात्कार होगा कि नहीं ?

ग्राम भारती
७–४–७६
बुधवार, रात्रि

रात्रि के साढ़े दस बजे हैं। स्वामीजी ग्रामभारती के डाक बंगले के बाहर लॉन (दूब) पर टहल रहे हैं। ग्रामभारती शाला के आचार्य भी उनके पास खड़े हैं। आज विद्यालय के विद्यार्थियों अध्यापकों एवं अन्यान्य गांवों से आए हुए लोगों को स्वामीजी के मधुर आध्यात्मिक वचनों का पान करने का सौभाग्य थोड़ी देर पूर्व मिला था। अतः आचार्य भी निश्चिंत होकर प्रसन्नता से इस पवित्र वातावरण में स्वामीजी के सान्निध्य का लाभ ले रहे हैं।

अभी अभी अहमदाबाद से एक साधक स्कूटर द्वारा मोटेरा आश्रम से स्वामीजी का पता लगाते लगाते आ पहुँचा है। इसको स्वामीजी के चरणों में आए थोड़े ही दिन हुए हैं, परन्तु योग साधना में आगे बढ़ने की इसकी गति बहुत अच्छी है। यह कई संतों के पास एवं आश्रमों में भटक कर संयोग से स्वामीजी की शरण में आ पड़ा है। परन्तु जब से स्वामीजी से इसका मिलाप हुआ है, तभी से यह घर एवं अन्य मित्रों के पास टिक नहीं पा रहा है और यही कारण है कि स्वामीजी से मिलने की उत्कंठा उसे रात्रिके १० बजे भी यहाँ खींच लाई है।

लेखक इस साधक एवं अन्य ३–४ साधकों सहित इसी प्रकार की बातें करते हुए थोड़ी ही दूर गया था कि स्वामीजी का स्वर सुनाई दिया–"अरे, कहाँ जा रहे हो तुम सब लोग ? और अभी वह जो आया है उसने तो हमें कुछ बताया भी नहीं कि वह कैसे आया है !" यह सुनते ही हम सब लौट पड़े और स्वामीजी के सामने लॉन (हरी घास) पर बैठ गए। सहज बात-चीत शुरु हो गई–

स्वामीजी– अपने कुछ साधक सोचते हैं– हमें आत्मसाक्षात्कार होगा कि नहीं ? उनको शंका है इसमें। चार मित्र हैं– एक हिन्दू, एक मुसलमान, एक इसाई और एक अंग्रेज। अब हिन्दू सोचे कि मुझे इन्सान के दर्शन कब होंगे, मुझे मनुष्य मिलेगा कि नहीं, मुझे मनुष्य के दर्शन होंगे कि नहीं ? इसी प्रकार सभी मित्र सोचे तो उनको इन्सान देखने में, इन्सान के रूप में स्वयं को पहचानने में कितना समय लगेगा ? उसे अधिक समय लगेगा क्या ? (चुटकी बजाते हुए) वह तो चुटकी बजाने जितनी देर में ही अपने को समझ सकता है कि मैं इन्सान हूँ। क्योंकि इन्सान तो वह है ही। पहले वह इन्सान है बाद में हिन्दू या अंग्रेज आदि है। उसे बनना थोड़े ही है इन्सान ! ईन्सान तो वह है ही, केवल उसको अपना यह जाति आरोपण का अज्ञान कि मैं हिन्दू या अंग्रेज या इसाई या मुसलमान हूँ-इसको मिटाना पड़ेगा। बनने में तो मेहनत है-

बोझा है, लेकिन समझने में केवल यथार्थ विचार की जरुरत है। समझने पर तो मैं इन्सान हूँ यह स्वयमेव ही प्रकट हो जायगा। वैसे ही 'हम आत्मा हैं' इसका साक्षात्कार करने के लिए, अपने आत्मस्वरूप को पहचानने के लिए केवल अपना जो देहध्यास है जो ऊपर से आरोपित है उसको मिटाने की देर है.... बस। फिर तो हम अपने आप को जान ही जायंगे। वह तो हम स्वयं ही हैं। बाहर ढूँढने जाना हो तो समय लगता है। (उस साधक से) क्यों....?

वह साधक क्या जवाब दे? लेखक और दोनों इसी शंका पर अभी-अभी दूर जाकर बातचीत कर आए हैं कि आत्मसाक्षात्कार बहुत कठिन है। उसके मार्ग में बहुत सी कठिनाइयाँ और परीक्षाएँ आती हैं। हम लोग पार कर सकेंगे कि नहीं? हममें तो अभी बहुत दुर्बलताएँ हैं। पता नहीं, स्वामीजी को हमारे दिलों की बात कैसे मालूम हो गई है? इसीलिये हम विस्मित हो स्वामीजी की तरफ देख रहे हैं।

स्वामीजी हमारी ओर मुस्कुराते हुए देख रहे हैं। उनका मुस्कुराना यह व्यक्त कर रहा है कि 'अरे, तुम कितने ही चोरी-चुपके विचार करो सब यहाँ यूँ का यूँ मेरे दिल में अंकित हो जाता है। और छुपाओ.... ! बोलो तो और भी तुम्हारे दिल की ऐसी ऐसी बातें तुम्हारे सामने खोलकर रख दूँ कि जिनको शायद तुम भी नहीं जानते होगे !'

लेखक को तो पहले भी कुछ प्रसंगों में ऐसी विस्मयकारी बातें स्वामीजी को देखने में आई हुई हैं परन्तु यह साधक अभी नया है, इसलिये इसको विस्मय के साथ संकोच भी है। हमें कुछ जवाब न देते हुए पाकर स्वामीजी ही बोलते हैं।

स्वामीजी–आत्मसाक्षात्कार वैसे कठिन विषय भले ही हो, परन्तु यदि किसी को समर्थ-गुरु मिल जाय जो योगी हो, आत्मज्ञानी हो, और श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ भी हो तो मार्ग बहुत छोटा हो जाता है। (विनोद में) मैं तो देखो, कुछ नहीं हूँ। सफेद कपड़े पहने हूँ। दाढ़ी बढ़ाए हुए हूँ,....बस।

वह साधक-आप स्वामीजी सब कुछ हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो रात को ऐसी ठंड में मैं स्कूटर दौड़ाता आपको ढूँढता हुआ यहाँ क्यों आता? मैं पहले कई आश्रमों में ध्यान और यौगिक क्रियाएँ सीखने गया था परन्तु कहीं भी विशेष सफलता नहीं मिली।

स्वामीजी–भाई, कितनी ही यौगिक क्रियाएँ सीख लो और कितने ही दिन ध्यान और समाधि लगालो, परन्तु जब ध्यान टूटा और राग-द्वेष, शत्रु और मित्र, तेरा ओर मेरा का भाव बना रहा तो उससे क्या? आत्म-साक्षात्कार एक अलग ही वस्तु है। उसके लिये आत्म-विचार करना ही पड़ेगा। ये साधन अवश्य हैं, लेकिन साध्य तो आत्म निष्ठा है। **इन साधनों के साथ यदि आत्मविचार है तो आत्म-साक्षात्कार जल्दी होगा।**

भगवान राम के गुरु वशिष्ठजी ने रामचन्द्रजी को जो कथा सुनाई थी वह मैं तुमको सुनाता हूँ। श्री राम के पूर्वज राजा दिलीप के पास एक हठयोगी आया। उसने राजा से एक बहुत अच्छा घोड़ा मांगा, परन्तु राजा ने इन्कार कर दिया। योगी ने कहा, 'मैं आपको एक चमत्कार बताता हूँ। मुझे आप एक बक्से में बन्द करके पृथ्वी में उस बक्से को गड़वा दें और ६ महीने बाद उस बक्से को बाहर निकलवाएं यदि मैं जीवित निकला तब तो वह घोड़ा आप मुझे इनाम में दे देंगे न? राजा उसकी यह बात मान गया। उस योगी ने बक्से में अपने आप को बंद करके समाधि लगा ली। बक्सा पृथ्वी में गाड़ दिया गया।

परन्तु जब उसको बाहर निकालने का निश्चित दिन आया तो राजा ने सोचा कि यदि उसको बाहर निकालेंगे तो यह घोड़ा उसको देना पड़ेगा, इसलिये उसको अन्दर ही मरने दो। वशिष्ट जी ने श्री राम को साथ लेकर उस जगह को खुदवाया और उस बक्से को बाहर निकलवाकर खोला तो उसमें से वह योगी जीता-जागता बाहर निकला। निकलते ही उसने और तो कोई शिकायत नहीं की और बक्से में से निकलकर तुरन्त बोला-'लाओ अब वह घोड़ा।'

यह सुनकर हम सबके हँसी के जोर से कई ठहाके उस शान्त वातावरण में गूँज उठे। स्वामीजी भी खुलकर हँसने लगे। स्वामीजी

की हँसी बड़ी तेजपूर्ण एवं आकर्षक है। स्वामीजी के सान्निध्य मात्र से जब कई प्रकार के दुःख व चिंताएँ विलीन हो जाती हैं तो जब वे हँसते है तब तो....। सारा वातावरण आह्लाद व उत्साह से भर गया है। हँसी शान्त होने पर स्वामीजी बोले-

स्वामीजी—तो वशिष्टजी ने कहा, "अरे, राजा दिलीप की तो कई पीढियाँ बीत गई, घोडे की भी कई पीढियाँ बीत गई और तुमको अभी भी उसी घोड़े की चाह है?" तो योग में कितना चमत्कार है? योगी चाहें तो इसी देह में हजारों वर्ष जीवित रह सकता है। (इस साधक के मन की थाह लेने के लिये इसी से) क्यों! ऐसा हो सकता है क्या? तुमको विश्वास आता है? ये तो सब पुरानी बातें हैं। ऐसे ही लोगों ने लिख दी होगी।

वह साधक- हाँ हाँ, बिल्कुल हो सकता है। ऐसे तो कई चमत्कार अभी भी कई जगहों पर देखने में व अखबारों में पढ़ने में आते रहते हैं।

स्वामीजी--अच्छा, ऐसा कोई योगी मिले तो हमको बताना, हम उसके दर्शन करने जायंगे।

वह विस्मय से स्वामीजी की ओर निहारने लगा। लेखक उसके सरल एवं विस्मयपूर्ण चेहरे को देखकर अधिक देर तक हँसी नहीं रोक सका और हँस पड़ा, क्योंकि वह स्वामीजी के कई यौगिक चमत्कार देख एवं भक्तों से सुन चुका है। परन्तु वह (साधक) तो

जानतानहीं और इसीलिये स्वामीजी उसके सरल स्वभाव से आत्मीय भाव से विनोद कर रहे हैं। उसको देखकर अन्य साधक भी हँस पड़े। उसका विस्मय और गहरा होता जा रहा है। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि स्वामीजी क्या कह रहे हैं और मुझसे क्या कहलवाना चाहते हैं? मैं तो अभी नया नया ही आया हूँ उनको पूरा समझ भो नहीं पाया हूँ, कहीं उनके बारे में गलत अनुमान न लगा बैठूँ? यह विचार कर वह और सतर्क हो जाता है फिर कुछ सोचकर वह कहता है–

साधक–स्वामीजी! मुझे अब कुछ कुछ याद आ रहा है कि आपको मैंने सपने में देखा है। ऐसे ही सफेद कपड़ों में आप थे। पिछली बार जब मैं आश्रम में आया था तो मेरे ध्यान में तुरंत यह बात आई थी कि हो न हो इनको ही मैंने सपने में देखा होगा, और अब तो यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि आप ही थे। पहलो बार देखने ही मात्र से मुझे आपके प्रति बहुत आकर्षण हुआ था।

स्वामीजी (मुस्कुराकर)–अरे, वह कोई दूसरे होंगे और आकर्षण तो मेस्मेरिज्म (मोहिनी विद्या) से भी हो जाता है। ऐसा ही तुम्हारे साथ हुआ होगा।

वह (दृढ़ता से)–नहीं नहीं स्वामीजी! मेस्मेरिज्म बिल्कुल अलग बात है। ऐसे प्रयोग भी मैंने बहुत देखे हैं। उसका और

इस पवित्र आत्मीय आकर्षण का भेद मैं अच्छी प्रकार से जानता हूँ।*

स्वामीजी– इसका प्रमाण क्या?

वह—और कोई हो न हो, अन्दर से तो कोई बोलता ही है।

स्वामीजी – कौन बोलता है अन्दर से और क्या बोलता है?

वह साधक अब तक स्वामीजी के आत्मीयतापूर्ण व्यवहार एवं बातचीत से काफी खुल गया है और अब झिझक छोड़कर बात करने लगा है।

साधक–वही, जो सबके अन्दर है। आप विनोद करते हैं! आप तो सब कुछ जानते हैं। योगी तो किसी के भी अन्दर के भावों का एक्स-रे की तरह पता लगा लेते हैं। आप तो मुझे उलझन में डाल रहे हैं और मुझे लग रहा है कि इस उलझन में मैं उलझता भी जा रहा हूँ।

यह सुनकर फिर से हम सबके हँसी के ठहाके रात्रिके नीरव वातावरण में गूँज उठते हैं। लेखक सोच रहा है कि उस की उलझन भी कैसी उलझन है! वह जानता है कि मैं

* यह साधक अल्पायु (२४ वर्ष) में ही एक बड़ी फर्म में सेल्स मैंनेजरशिप का कार्यभार संभालते हुए मासिक १२०० रु० वेतन प्राप्त कर रहा है।

उलझन में पड़ रहा हूँ, कोई मुझे उलझन में डाल रहा है, फिर भी वह उलझन में उलझता जा रहा है ! जैसे इस उलझने में भी उसे मजा आ रहा हो । फिर भी वह भाग्यशाली है, क्योंकि यह उलझन उसकी सारी उलझनों का अन्त करने वाली है । यदि इस उलझन (स्वयं को भूलकर सद्गुरु से तादात्मय) में उलझ गया तो वह सारी उलझनों (भवबन्धन) से छूट जायगा । उसका सरल चेहरा यह साफ बता रहा है कि वह बहुत घूमा है, बहुत भटका है तब जाकर इतनो कठिनाईयों के पश्चात् उसे ऐसे सद्गुरु प्राप्त हुए हैं। उसे एक प्रकार से डूबते को तिनके का सहारा मिला है । उसे डर सा लग रहा है कि कहीं ये भी बातों बातों में उससे छूटकर तो चले नहीं जाएँगे ? नहीं, नहीं ! वह यह अवसर हाथ से नहीं जाने देगा । स्वामीजी भले ही बातों में उसे भटकाते रहें, वह उनका पीछा नहीं छोड़ेगा । अब तक उस ने भी बातचीत करने हेतु काफी साहस जुटा लिया था । हमारे हँसने की अब उसने बिल्कुल परवाह नहीं की और बोला—

वह साधक—स्वामीजो, आपने तो बहुत सी बातें मुझसे पूछी । (हाथ जोड़ते हुए) अब आप आज्ञा करें तो मैं भी एक बात पूछना चाहता हूँ ।

स्वामीजी—हाँ ! हाँ !! पूछो—

वह-मुझे ऐसा क्यों होता है कि घर पर होऊँ या आफिस में, बार बार यह इच्छा उठती है कि शीघ्र ही यह काम खत्म कर या छोड़कर स्वामीजी के पास चला जाऊँ और शीघ्रातिशीघ्र उनसे मार्ग

दर्शन लेकर साधना में आगे बढ़ूँ ! पिछली बार जब आश्रम में आया था तब रहने की भी बड़ी इच्छा थी । शिविर में कई लोग रह ही रहे थे, परन्तु मुझे तो आपने जल्दी छुट्टी देकर भगा दिया था । इसीलिये जब इस बार आश्रम में पहुँचा और पता लगा कि आप अभी अभी ग्राम भारती की तरफ गए हैं तो बिना एक क्षण भी खोये बहुत तेज स्पीड़ से स्कूटर भगाता जैसे तैसे यहाँ पहुँच हो गया ।

स्वामीजी—यह तो अपने पूर्व के संस्कारों से होता है । मैं भी जब छोटा था तब इस प्रकार होता था। ८-१० वर्ष की आयु में भी जब कभी मैं हृदय के दृढ़ भाव से कोई बात कह देता था तो वह पूरी होकर रहती थी। बचपन में ध्यान करते समय आगे क्या होगा, इसका भी कभी कभी पहले ही आभास हो जाता था । तो यह सब तो पूर्व के संस्कार वश होता है। अच्छा, अब कब जाने का है वापस ?

वह साधक—अब जाने का तो क्या है ?.... वैसे कल की छुट्टी तो नहीं लेकर आया हूँ, फिर भी आप मना नहीं करेंगे तो आपके चरणों में कल भी रहने की इच्छा है। फिर जैसी आप आज्ञा करेंगे।

थोड़ी देर सन्नाटा रहता है, फिर—

स्वामीजी—तो तुम ऐसा कोई योगी नहीं दिखाओगे हमको ? खैर, साधना काल में हमने ऐसे योगी देखने का प्रयास किया था । एक बार ऐसे ही हिमालय के अरण्य में जा रहा था तो मन में संकल्प उठा कि यहाँ कोई योगी मिल जाय तो बड़ा अच्छा

रहे । योगी कभी कभी अपनी सूक्ष्म देहों में झुण्ड के झुण्ड चलते हैं । मेरा उधर मन में संकल्प उठा और थोड़ी ही देर में मैंने पीछे देखा तो एक व्यक्ति मेरे पीछे-पीछे चलता नजर आया । वह पीछे से ही मुझसे बोला, "महाराज, आप किधर जा रहे हैं ?" मैंने कोई खास ध्यान नही दिया और कहा-'आगे गोमुख जा रहा हूँ जहाँ से गंगा निकलती है ।' थोड़ी देर में देखा तो वह मेरे आगे चलता नजर आया । और ज्योंही मैंने विचार किया कि उसके पास पहुँचु, इसके पूर्व ही वह अदृश्य हो गया । तब मुझे ध्यान आया कि अरे, मैं योगी देखना चाहता था तो योगी भी आ गया, परन्तु मैं पहचान नहीं पाया ।

स्वामीजी कहते कहते रुक गए हैं । रात का पौना बज गया है । बातों बातों में समय कैसे निकल गया, पता ही नहीं चला । समय तो क्या निकला है, समय का सदुपयोग हुआ है ।

स्वामीजी—अच्छा जाओ, अपने आत्मस्वरूप का चिन्तन करते हुए विश्राम करो ।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

ॐ

परमार्थ साधन के लिए शरीर स्वस्थ बनाएँ-

ग्राम भारती
८–४–७६
गुरुवार

प्रातः के सवा सात बजे हैं । ग्राम भारती विद्यालय के क्रीडा-ङ्गण में समस्त विद्यार्थी एवं अध्यापक-गण बैठे हैं । उनके सामने एक पेड़ के नीचे चबूतरे पर सुसज्जित आसन पर स्वामीजी ध्यान-मग्न मुद्रा में विराजमान हैं । सर्वत्र शान्ति है । कभी कभी कुछ पक्षियों के बोलने की आवाज सुनाई देती है । सारे वातावरण को देखते हुए, प्राचीन भारत के आश्रमों की याद आ जाती है । प्राचीन आश्रमों में इसी प्रकारके प्राकृतिक मनोहर वातावरण में गुरु शिष्य को उपदेश दिया करते थे । विद्यार्थी संगीत के साथ गुरु वंदना करते हैं—

मोरी लागी लटक गुरु चरणन की ।
चरण बिना मोहे कछु नही भावे,
झूठ माया सब सपन की,
मोरी लागी........ ।

गुरु-वंदना पूरी होती है । धीरे-धीरे स्वामीजी अपने बंद

नेत्र खोलते हैं और सभी की ओर दृष्टिपात् करके अपनी अमृतमय वाणी में बोलना प्रारम्भ करते हैं–

स्वामीजी–सभी में विराजमान् सच्चिदानंद आत्म देव ! आज का प्रवचन शारीरिक एवं मानसिक उन्नति का रहेगा। एक प्रयोग है जलनेति का। 'सब दुःखोंको एक दवाई, जलनेति सीखो भाई।' अभी आपको जलनेति करने की विधि बताई जाएगी। ईस जलनेति से आँख की, कान की, नाक की सब छोटी-मोटी बीमारियाँ चली जाती हैं। नेत्रों की शक्ति बढती है। शरीर में कुछ विजातीय द्रव्य बनते हैं, वे यदि नेत्रों की तरफ जाएँ तो नेत्र कमजोर होते हैं, कानों की तरफ जाएँ तो कान ख़राब करते हैं, दाँतों की तरफ जाएँ तो दाँत कमजोर करते हैं। वह द्रव्य मस्तिष्क में ही रहे तो नजला हो जाता है और यदि गले के नीचे की ओर उतरे तो दमा व क्षयरोग जैसे भयंकर रोग हो जाते हैं। ईस जलनेति से छोटी-मोटी १५०० बीमारियाँ दूर होती हैं। स्वामी लीलाशाह के सामने एक बार भक्तों ने एक पेटी लाकर खोली, उसमें कई पुराने चश्मे भरे पड़े थे। स्वामीजी ने पूछा, "ये क्यों लाए हो ?" भक्तों ने बताया, "आपने जो जलनेति की क्रिया कुछ वर्ष पहले सिखाई थी, उससे इतने लोगों के चश्मे छूटे हैं। यही बताने के लिये ये आपके सामने लाए हैं।"

स्वामीजी रेवाचंद (साधक) को संकेत करते हैं। रेवाचन्द सब के सामने जलनेति की क्रिया करके बताते हैं। सभी उत्सुकता से देखने लगते हैं।

स्वामीजी–यह क्रिया स्नान से आधा घंटा पूर्व या स्नान के तुरन्त बाद हो सकती है। आँख, नाक, कान आदि के रोगों पर तो यह रामबाण औषधि है। महीने में ५ नया पैसा (नमक का) सिर्फ खर्च होता है इस इलाज में।

अब आपको कुछ आसन बताए जाएंगे। आसन तो बहुत हैं, परन्तु उनमें जो बहुत अधिक लाभकारी है वह है 'पाद्-पश्चिमोत्तानासन'। इसमें दोनों पैर सीधे रखकर उनके अंगूठे हाथों की अंगुलियों द्वारा कपड़ें व कमर से ऊपर का भाग झुकाते हुए और घुटनों को सीधा करते हुए, नाक को दोनों घुटनों के बीच में लगाने का प्रयास करें।

(यह आसन रेवाचन्दभाई करके बता रहे हैं।)

स्वामीजी– हमारे शरीरमें नाभि से कन्धे तक ७२००० नाड़ियाँ हैं, उनमें से १४ मुख्य हैं और १४ में से भी तीन अतिमुख्य हैं– ईड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। ईड़ा बांई तरफ, पिंगला दाहिनी तरफ और सुषुम्ना नाड़ी नासिका के मध्यमें होती है। जैसे किसी पेड़ का सम्पूर्ण आधार तना होता है, वैसे ही शरीर का आधार रूप यह तीन प्रमुख नाड़ियाँ हैं जो वात, पित्त और कफ को नियंत्रित करती हैं।

इस आसन से इन नाड़ियों की विशेष शुद्धि होकर कार्यक्षमता बढती है और शरीर की कई बीमारियाँ दूर होती हैं। बदहज्मी–कब्जी जैसे पेट के सभी रोग, सर्दी-जुखाम, कफ गिरना,

कमर का दर्द, हिचकी, सफेद कोढ़, पेशाब की बीमारियाँ, स्वप्न-दोष, वीर्य-विकार, अपेन्डिक्स, साइटिका (Scitica) नलों की सूजन, पाण्डुरोग (पीलिया), अनिद्रा, दमा, खट्टी डकारें, ज्ञानतन्तुओं की कमजोरी, गर्भाशय के रोग, मासिकधर्म की अनियमितता व अन्य तकलीफें, नपुंसकता, रक्त-विकार, ठिगनापन व अन्य कई प्रकार की बीमारियाँ यह आसन करने से दूर होती हैं। आरम्भ में आधा मिनट से प्रारंभ करके प्रति-दिन थोड़ा-थोड़ा समय बढ़ाते हुए १५ मिनट तक कर सकते हैं। पहले २-३ दिन तकलीफ होती है, फिर सरल हो जाता है।

इस आसन से शरीर का कद लम्बा होता है। यदि शरीर में मोटापन है तो वह दूर होता है और यदि दुबलापन है तो वह दुबलापन दूर होकर शरीर सामान्य तन्दुरुस्त अवस्था में आ जाता है। मेरा शरीर बचपन में ठिगना और मोटा था, इसलिये मुझे कोई कोई ठिगूजी और घट्टूभाई कहते थे। मैंने यह आसन ४० दिन तक ही किया और मक्खन में प्रतिदिन काली मिर्च मिलाकर खाता रहा। इससे मेरे शरीर में बहुत परिवर्तन आया। और अब बोलो, मुझे कोई घट्टूभाई कह सकता है? जो कहे वह आवे और मेरे से हाथ छुड़ावें (विनोद में) यदि हाथ छुड़ा लिया तो यह प्रसाद का डिब्बा मुफ्त !

स्वामीजी प्रसाद का डिब्बा खोलकर उसमें रखी मिठाइयाँ सब को दिखाते हैं। स्वामीजी के विनोदी स्वभाव से सभी हँस रहे हैं। मिठाईयाँ देखकर विद्यार्थिओं में कानाफूसी होने लगी है। उनमें उत्साह

पाद - पश्चिमोत्तानासन

दोनों हाथों से पैरों के अंगूठे पकड़कर झुकते हुए सिर को दोनों घुटनों से मिलाने का प्रयास करें। घुटने जमीन पर सीधे रहें। प्रारंभ में घुटने जमीन पर न टिके तो कोई हर्ज नहीं। सहज अभ्यास से यह आसन सिद्ध हो जायगा।

आ रहा है, यह सोचकर कि स्वामीजी से कोई हाथ छुड़ावे या नहीं, यह मिठाईयाँ स्वामीजी साथ वापस नहीं ले जाएंगे, और अन्त में प्रसाद-रूप में उनको ही मिलने वाली हैं। कल रात्रि को भी प्रवचन के पश्चात् ऐसी ही मिठाईयाँ सबको प्रसाद रूप में मिली थी। यह प्रसाद व्यक्त कर रहा है कि स्वामीजी का बच्चों पर सहज विशेष प्रेम है।

स्वामीजी– कोई कोई लोग शक्ति के लिये अण्डा-मांस आदि खाते हैं, परन्तु इनसे भाव शुद्ध नहीं बनते, दूषित होते हैं। और यदि भाव शुद्ध नहीं हैं तो शक्ति मनुष्य को बरबादी की ओर ले जाती है। शरीर कितना ही शक्तिशाली व सुडौल हो, साथ में मन भी निर्मल होना चाहिये। राजस-तामस गुणों से व्यक्ति मानव से दानव बन सकता है, और इस आसन से राजस-तामस गुण दबते हैं व सत्व गुण बढ़ता है। इस आसन से शरीर का हलकापन और भारीपन मिटकर शरीर मजबूत, स्वस्थ व सुडौल बनता है।

स्नान करते समय बहुत सावधान रहना चाहिये। कई लोग तो ऐसे ही शरीर पर पानी ड़ालकर समझ लेते हैं कि स्नान हो गया, परन्तु इससे स्नान का पूरा लाभ नहीं मिलता। पूरे शरीर को हाथों से या गीले कपड़े से रगड़-रगड़ कर स्नान करना चाहिये। कान के पीछे के भाग व गर्दन को भी खूब मसलकर स्नान करे। इससे ब्रह्मचर्य के रक्षण में सहायता मिलती है।

अपने इष्टदेव को स्मरण करते करते आसन करो तो सोने में सुहागा है। सूर्योदय से पूर्व स्नान कर लेना चाहिये। इससे सत्व गुण में वृद्धि होती है। सर्दियों में कई आलसानन्द जी (आलसी) बहुत सोने वाले उठते तो देर से है ही, जब सूरज बहुत ऊपर चढ़ जाता है, स्नान भी जल्दी जल्दी और अधूरा करते हैं। उनके जीवन में स्फूर्ति नहीं रहती। कई रोटलानन्द जी होते हैं जो तू जा दूसरा आवे, तू जा दूसरा आवे (हाथों को जल्दी-जल्दी मुंह के पास ले जाने की क्रिया बताते हुए) इस प्रकार जल्दी जल्दी भोजन करते हैं जैसे रोटी कहीं भाग जाने वाली हो।

स्वामीजी— लेकिन यह कोई खाने का तरीका नहीं है। भोजन बहुत चबा-चबाकर करना चाहिये। इससे आँखों की ज्योति बढ़ती है, दाँत मजबूत होते हैं, आयुष्य बढ़ता है और मस्तिष्क को बल मिलता है। इससे राटियों की भी बचत होती है। आप यहाँ यदि तीन सौ विद्यार्थी हैं और ऐसा करने से प्रति विद्यार्थी एक रोटी बचे तो तीनसौ रोटियाँ बच जायगी। बोलो! बचेगी की नहीं?

सब बोलते हैं—बचेगी।

स्वामीजी— तो ८०–९० दूसरे विद्यार्थियों का पेट भरेगा कि नहीं? इसलिए भोजन चबा-चबाकर करना चाहिये। भोजन के पश्चात अच्छी प्रकार से कुल्ला करना चाहिये। यदि दाँतों में कहीं भोजन का कुछ अंश लगा रह गया तो दाँत कमजोर हो

जाएंगे। हमारे स्वामीजी (स्वामी लीलाशाह)—की ९६ वर्ष की उम्र थी, परन्तु उस समय भी उनके दाँत लट्ठ जैसे थे। (सामने बैठे एक डॉक्टर साहब की ओर देखकर मुस्कुराते हुए) यदि आप सारा जीवन ऐसा करते रहें तो हकीम और डॉक्टरों को थोड़ा आराम मिले।

यह सुनकर बीच में बैठे डॉक्टर एवं उनके पास बैठे दूसरे साथी मुस्कुरा रहे हैं।

एक वृद्ध स्वामीजी के सामने आकर माथा टेकता है और बड़ी श्रद्धा से उनके सामने कुछ पैसे रखता है। स्वामीजी पैसे उठाकर पुनः उसके हाथ में देकर सामने बैठने को कह देते हैं।

स्वामीजी— तो ये शारीरिक उन्नति के कुछ नियम हैं। अब मैं आपको याद (स्मरण) शक्ति मजबूत करने की विधि बताऊँगा।

बच्चों में कुछ बातचीत करने की आवाज आ रही है। उस को लक्ष्य कर स्वामीजी कहते हैं—

स्वामीजी— तुमको यदि सुनना हो तो मैं आगे बोलता हूँ, नहीं तो मैं अपना करमंडल उठा कर चलता हूँ। कहीं एकान्त में जाकर ध्यान-भजन करूँगा। बेकार समय बरबाद करने से क्या अर्थ?

बच्चे (चुप होकर)— नहीं नहीं, सुनना है।

स्वामीजी— (विनोद पूर्वक) पक्के ग्राहक हो कि कच्चे?

बच्चे— पक्के।

स्वामीजी– पक्के हो तो रखो सब मूंछों पर हाथ !

बच्चे (मूंछें नहीं है फिर भी) मूंछों पर हाथ रखते हैं, साथ में सब हँस भी पड़ते हैं ।

स्वामीजी– योग में कैसा सामर्थ्य है ? एक दृष्टांत सुनो । गिरनार का नाम तो सबने सुना ही है । गिरनार पर्वत पर गुफा में एक संत रहता और ध्यान करता था । एक माई (महिला) उधर जाकर उनकी कुछ न कुछ सेवा करती रहती थी । जब वह साधु उधर से जाने लगा तो उस माई ने प्रार्थना की कि महाराज, मुझे भी कुछ दे जाओ ! संत ने मौज में आकर उसे ध्यान की कला सिखा दी । उसे ध्यान लगने लगा । ध्यान मे उसकी काफी प्रगति हुई । ध्यान से कुछ शक्ति आई कि नहीं, यह देखने के लिये उसने एक परीक्षण किया। एक लकडी के डंडे को झोली देकर उसने कहा, "जाओ, अमुक अमुक के घर से भिक्षा ले आओ ।" वह डंडा गया और भिक्षा ले आया । इन चमत्कारों के कारण उधर जूनागढ़ की जनता उसको आद्याशक्ति देवी के रूप में मानने लगी । एक तो कोली जात की, फिर अयोग्य को संत की कृपा से योग की शक्ति मिल गई, इससे उस माई को अभिमान हो गया । सब विद्याओं का नाशकर्ता अभिमान है । रावण इसी घमण्ड के कारण इतना विद्वान होते हुए भी अविद्यापूर्ण आचरण करता था ।

यह माई भी फिर किससे लज्जा रखें ? एकबार शहर में वह किसी के यहाँ विवस्त्र पगला (चरण घुमाने) करने गई । मन्त्री की पत्नी

को यह अच्छा नहीं लगा । कोई कितनी ही पहुँची हुई क्यों न हो, व्यवहार में तो उसे कपड़े पहन कर ही आना चाहिये ! उसने अपने पति से यह बात कही । मंत्री ने उसे कहा कि मैं यह बात राजा से कहकर उसपर बन्दिश नहीं लगवा सकता । इसमें मेरी नौकरी का भय है । मन्त्री की स्त्री ने सोचा, यह काम और कोई नहीं कर सकेगा, मुझे ही करना पड़ेगा । वह रात्रि में खंजर लेकर अकेली ही गिरनार पर पहुँची और एक संत की कुटिया का द्वार खटखटाया । संत ने कहा, " तुम स्त्री होकर रात को इस निर्जन स्थान में क्यों निकली हो ?" वह बोली, "मैं स्त्री हूँ, लेकिन अबला नहीं हूँ । मैं अपना रक्षक आप हूँ महाराज ! धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार हो रहा है । वह माई अपने तप के घमण्ड में उच्छृंखल हो गई है । राजा और मन्त्री जैसे सामर्थ्यवान् लोगोंको भी उसे टोकने की हिम्मत नहीं है । इसलिये महाराज ! मैं आप के पास आई हूँ ।" संत ने कहा-'अच्छा जाओ, तुम आराम करो. यह काम हो जाएगा । '

वे संत योगी थे, सामर्थ्यवान् थे, और साथ-साथ दयालु भी थे । उन्होने सूक्ष्म जगत की एक आत्मा गंगाराम को बुलाया और कहा, "तुम जाओ और उस योगिनी माई के पेट में घुसकर उसका पेट मोटा कर दो ।" उधर उस योगिनी ने एकाएक देखा कि उसका पेट फूल गया है, जैसे कि पेट में कोई बच्चा बड़ा हो रहा हो । अब वह बड़ी घबराई । लोक-लज्जा के भय से उसका बाहर निकलना बंद हो गया। पेट फूलने से अब साधना भी

नहीं कर सकती थी। उसे ग्लानि और मानसिक अशान्ति ने आ घेरा। उसका जीना मुश्किल हो गया। आखिर तंग आकर उसने आपघात करने का निश्चय किया और एक कुएं पर पहुँच गई। योगी ने वह आपघात (आत्महत्या) न करे इसके लिये मंत्री पत्नी से कुछ सिपाहियों की व्यवस्था पहले ही करवा रखी थी। उन सिपाहियों ने उसे कुए में कूदने से पहले ही पकड़ लिया। उसी समय वहाँ वह योगी भी आ गये। उन्होंने उसे पूछा, 'तुम आत्महत्या क्यों करना चाहती हो?' उस योगिनी-माई ने अपने पेट की ओर इशारा करते हुए कहा-'महाराज! मैंने कोई दुष्कर्म नहीं किया, फिर भी यह विपत्ति पता नहीं कहाँ से आ खड़ी हुई है?' योगी ने उसके पहले के उच्छृङ्खल आचरण पर उसे थोड़ा फटकारा और कहा कि 'तुम थोड़ी सी सिद्धि मिली और घमण्ड में आकर उसका दुरुपयोग करने लग गई? ध्यान और एकाग्रता का उपयोग तो ईश्वरी तत्त्व को पहचानने के लिये होना चाहिये। बोलो! अब अपना व्यवहार सुधार लोगी कि नहीं?' इसके बाद से वह योगिनी-माई सुधर गई और गुप्त रूप से अपना ईश्वर चिंतन करने लगी। इस दृष्टांत में मुख्य दो बातें हैं—

१. साधना करे तो उससे जो शक्ति और सामर्थ्य मिलने वाला है, उसको सम्हालने की योग्यता एवं विवेक भी रखना चाहिये, अन्यथा उसका दुरुपयोग साधक को पतन के मार्ग में डाल देगा।

२. अधर्म को घटाने के लिये मन्त्री की पत्नी ने कितना साहस दिखाया? यदि साहस से काम ले तो कौनसा ऐसा काम है जो अटक सके?

यह कौनसी उक़दा है, जो वह हो नहीं सकता?
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता?
कीड़ा जरासा और वह पत्थर में घर करे?
इन्सान क्यों न वह दिले दिलबर में घर करे?

विद्या-अर्जन में ध्यान बहुत सहयोगी है। ध्यान करनेवाला कम परिश्रम से अधिक विद्या अर्जन कर सकता है। दूज (बीज) के चन्द्रमा को बार बार आँखें खोल एवं मूँद कर देखने से आँखों की ज्योति एवं एकाग्रता बढ़ती है। उसके बाद पाठ पढ़ो, पाठ जल्दी याद होगा।

यदि आप थके हुए (कन्टाले हुए) हो, तो क्या करना? उस समय किसी कुर्सी पर बैठकर या लेटकर एक दो मिनट के लिये सारा शरीर ढीला (शिथिल) छोड़ दो। थोड़ी ही देर में आपको आराम और नई स्फूर्ति महसूस होगी। आश्रम में कई बार उत्सव आदि प्रवृत्तियाँ होती हैं, तो उन दिनों छह-छह रात और दिन तक नींद और आराम मुझे नहीं मिल पाता। तब मैं ऐसे ही क्रिया करके विश्राम पा लेता हूँ। उसके बाद मुझे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि महाराज कितने दिन के जगे हैं?...... अच्छा, बोलो तो एक और बात बताऊँ?

सब– बताओ !

स्वामीजी– चलो, रहने दो ! अगले वर्ष जब इधर आऊँगा तब बताऊँगा ।

स्वामीजी के ऐसा कहने से विद्यार्थियों में और अधिक उत्सुकता जग पड़ी है। वे सब यह भूल चुके हैं कि हम किसी का प्रवचन सुनने के लिये यहाँ अध्यापकों द्वारा बैठाए गए हैं। उन की उत्सुकता एवं स्वामीजी से बात जानने का बाल-हट देखकर ऐसा लगता है जैसे बच्चे घर में अपने दादा से कहानी सुन रहे हैं। यह उनके साथ स्वामीजी की आत्मीयता का चमत्कार है। वातावरण में से सारी औपचारिकता (आपस का छोटे-बड़े व अन्य संबंधों का कृत्रिम दिखावा) लुप्त हो गई है। परन्तु इस तरफ लक्ष्य बहुत कम लोगों का है कि स्वामीजी ऐसे ही विनोद पूर्ण वार्तालाप में विद्यार्थियों को योग एवं वेदांत का गूढ़ार्थ समझाते जा रहे हैं।

सभी एक साथ आग्रह करते हैं–नहीं, अभी बताइये ।

स्वामीजी (बहुत धीमी आवाज में बोलते हैं जैसे कोई गूढ़ बात कह रहे हों)–

यह जो रेवाचन्द आपको आसन करके बता रहा है, यह कद में बहुत छोटा है । यह देर से मेरे पास आया । यदि पहले आया होता तो यह आसन सीखकर अबतक बहुत लम्बा हो जाता । फिर भी आप सब इसको ऐसा-वैसा मत समझना ! यह शहर के महावीर अखाड़े का आगेवान रिलरी पहलवान है। इसके बारे में

एक बात तुम सबको बताता हूँ। जब इसका जन्म हुआ था तब यह साईज (कद) में बहुत छोटा होने से इसकी मां इसको रूई में रखती थी। एकबार एक कुत्ता इसको मुंह में उठाकर ले भगा। मां जब इसको सम्हालने कमरे में आई तो देखा कि यह तो वहाँ है ही नहीं और एक कुत्ता मुंह में कुछ उठाकर भाग रहा है। उसने फिर तुरंत दौड़कर इसको कुत्ते के मुँह से छुड़ाया। अब तो यह पहलवान है। परन्तु शेयर-बाजार वाला पहलवान नहीं समझना, जो बहुत जोर जोर से बोलते तो हैं मगर उनके अन्दर में इतनी ताकत नहीं होती ।

सभी एक साथ–जी ऽऽ !

स्वामीजी– मैं भारत के प्राचीन ऋषियों की तरफ से आप को प्रार्थना–विनती, लेकिन विनती तो ऋषि करते नहीं हैं अतः आज्ञा देता हूँ, (कुछ रुककर) आज्ञा शब्द भी ठीक नहीं है, खैर जो भी आप समझो, ये जो भी जलनेति की विधि, आसन एवं अन्य बातें बताई हैं, वे करना और पहलवान नहीं तो स्वस्थ व सुगठित शरीर वाले अवश्य बनना ।

आध्यात्मिकता तो अपने जीवन में अपने आप आती है, यदि हम शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य की तरफ ध्यान देवें तो। कहते हैं न, 'आगे आगे गोरख जागे ' और इसमें यह आसन बहुत सहयोगी है ।

प्राणायाम से बहुत लाभ हैं। इससे फेफडों के कई निष्क्रिय भाग भी क्रियाशील हो उठते हैं और शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म हिस्से में जमे विकार भी दूर हो जाते हैं। शरीर में तेज व बल की वृद्धि होती है। शरीर सुन्दर बनता है। शरीर में नवस्फूर्ति का संचार होता है। एकाग्र होने में यह प्राणायाम बहुत मदद-रूप सिद्ध होता है।

मनुष्य के फेफडों में ३००० करीब छिद्र होते हैं, परन्तु वह सबसे काम नहीं लेता। किसी के पास ३ करोड़ रुपये हों, लेकिन जमीन में गाड़ के रखे हो तो उनका क्या उपयोग? वे होते हुए भी बेकार हैं। ऐसे ही फेफडों के सभी छिद्र सामान्य श्वासोच्छ-वास से काम में नहीं आते। उनमें से काफी वैसे ही बेकार पड़े रहते हैं। प्राणायाम से जब अधिक हवा फेफडों में भरी जाती है तो वह इन बंद पड़े छिद्रों को भी सक्रिय कर देती है और उन का भी उपयोग होने लगता है। इससे फेफड़ों की शक्ति में काफी वृद्धि हो जाती है और शरीर के बहुत पुराने मल-विकार नष्ट हो कर शरीर स्फूर्तिवान और हल्का महसूस होता है। विचारों में एकता आती है और मन इतना प्रसन्न होता है मानो स्वर्ग में बैठे हों।

हमारे एक मित्र संत हैं। उनके पास एक विद्यार्थी आया करता था। संतों का स्वभाव होता है कि जो भी उनके पास आवे उसको कुछ न कुछ देना। तो उन्होंने उसकी श्रद्धा देखकर-उसे कुछ आसन प्राणायाम व थोड़ी ध्यान करने की विधि

भी बता दो ताकि वह पढ़ाई में झपाटाबन्द (द्रुतगति से) प्रगति कर सके। उसने ये प्रयोग नियमपूर्वक करना प्रारंभ कर दिया। इससे उसके शरीर व मस्तिष्क का ऐसा विकास हुआ कि परीक्षा में उसे बहुत अच्छे अंक प्राप्त हुए। उसे छात्रवृत्ति भी (Scholarship) मिली। फिर यहाँ से वह अमेरिका पढ़ने गया। वहाँ भी उसने अपना यह योगासन आदि का दैनिक अभ्यास जारी रखा। वहाँ के लोगों को यह बड़ा विचित्र लगा। वहाँ लोगों ने उससे कहा-'हमें भी यह विद्या सिखाओ।' उसने वहाँ के लोगों को सिखाना शुरू कर दिया। इससे लोगों को बड़ा लाभ महसूस हुआ। धीरे धीरे उसने यह सब सिखाने का एक बड़ा केन्द्र ही वहाँ खोल दिया।

अब वह उन संत को कहता है कि यदि आपकी कृपा नहीं हुई होती तो अभी मैं क्या कर रहा होता? अधिक से अधिक कोई छोटी मोटी नौकरी करता और अपना जीवन यों ही गुजार देता। अभी भी वह अमेरिका में है। इस विद्या के कई सेन्टर (centre) उसने वहाँ खोल रखे हैं। लाखों रुपये कमाकर भेज रहा है और वहाँ वह पूजा जा रहा है।

यह सब योग का चमत्कार है। परन्तु ये सब करने के साथ आहार शुद्धि का भी ध्यान रखना चाहिये। लोग शारीरिक और मानसिक शक्ति के लिये सफेद चोकू (अण्डा) और मांस आदि अखाद्य पदार्थ खाते हैं। ऐसा भोजन तमोगुण व

रजोगुण बढ़ाता है। अण्डे को आमलेट आदि बनाकर खाया जाता है, नहीं तो यह ठीक से हजम नहीं होता, यों का यों निकल जाता है और साथ ही शरीर की दूसरी शक्ति भी लेकर जाता है। अण्डे में ५०-५५ केलोरी शक्ति बताते हैं। इसकी तुलना में तो केला अच्छा जिसमें ७०-७५ केलोरी शक्ति होती है। केला होता भी उससे काफी सस्ता है। केला तो ठाकुरजी को भी चढ़ा सकते हैं और यह सफेद चीकू ? इसको चढावें तो.... ?

सब हँसने लगते हैं।

स्वामीजी- कुछ लोग शक्ति और स्फूर्ति के लिए नशा करते हैं। चाय पीने वाले कहते हैं-'यह शरीर को ताजगी और ठंड़क देती है।' दर असल वह शक्ति देती नहीं, हर लेती है। उस हरि हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिये बार बार व्यक्ति चाय पीता है और अधिक कमजोर होता जाता है। जैसे थका हुआ घोड़ा बार बार चाबुक लगाने से चलता है, वैसे ही चाय पीने से यह शरीर कमजोर हो जाता है, थक जाता है और इसको चलाने के लिये बार बार चाय रूपी चाबुक को जरुरत पड़ती है।

चाय तो बेचारी कहती है-

चाय कहे मैं जम की मासी,
एक हाथ खड्ग, एक हाथ फांसी।

नशा करने वाले मूढ़ लोग अपने समर्थन में साखियाँ भी बना लेते हैं। मच्छी खाने वाले कहते हैं-

मच्छीऽऽ सबसे अच्छीऽऽ, कांटा-कांटाऽऽ एकादशी,
धड़ खाएऽऽ सो द्वारिका जाए, पूँछ खाएऽऽ सो काशी।
मच्छीऽऽ तरनवारी, दूजन कोऽऽ तारनवारी।
मच्छीऽऽ सबसे अच्छीऽऽ....।

स्वामीजी- ऐसे ही दारुड़िया (शराबी) अपने दारु की महिमा गाता है-

'लगा दम, मिटे गम'

सही तरीका तो यह है, ध्यान करने से गम मिटता है। परन्तु लोगों ने इस वाक्य का गलत अर्थ लगाया।

नशा किया और बुद्धि बिगड़ी तो निर्णय शक्ति गुम। फिर तो दारुड़िया अपने आपको भूलकर शेर बन जाता है। किसी को कुछ नहीं समझता। परन्तु कैसा शेर .... ? चित्रलिखित-अन्दर से तो फें-फूं, खोखला, शक्तिहीन, धक्का मारें तो गिर पड़े, परन्तु ऊपर से व्यवहार शेर का। वह अपने बस में नहीं रहता है। यदि काम विकार आये, जो कि आना ही है तो उसमें इतनी शक्ति नहीं कि वह उसको रोक सके। विकार एक बार आया तो कुछ न कुछ शरीर की क्षति करके ही जाएगा। किसी से वैर हों, तो उसे मुफ्त में दारु पिला दो, फिर देखो क्या होता है ? फिर उसको ऐसी आदत लग जाएगी कि अपने आपको बरबाद कर देगा, लेकिन दारु नहीं छोड़ेगा। इसलिये संत तो दुश्मन को भी शराब पिलाने का नहीं कहते।

बहुत दिनसे विचार चल रहा था कि ग्राम भारती जाएंगे। किसी ने ऐसा बताया था कि यह विद्यालय देखने योग्य है। एक दिन मोतीभाई उधर आश्रम में आए, तो बात ही बात में यहाँ आनेका कार्यक्रम निश्चित हो गया। प्रसन्नता में वृद्धि हो ऐसा वातावरण है यहाँ। यहाँ पर योग और वेदान्त की शिक्षा भी दूसरी विद्याओं के साथ साथ आपको मिले, और आप अपने जीवन में उसको उतारे तो आपका जीवन चमक उठें, आपके जीवन में चार चाँद लग जाएं, क्योंकि यहाँ की पद्धति ऋषि-पद्धति है; भले ही नाम इसका ऋषि आश्रम नहीं है। मुझे आप सबका खूब खूब आभार मानना चाहिये, एक दृष्टि से; परन्तु जब ऋषि दृष्टि से सोचता हूँ तो बिलकुल नहीं। क्योंकि आभार तब माना जाए जब कोई भार रखा हो। मैंने तो कोई भार रखा नहीं, प्रत्युत्त मैं तो शारीरिक व मानसिक भार उतारने में प्रयत्नशील हूँ। आप सब के हृदय में जो विराजमान् परमात्मा है। उसको बारंबार नमस्कार है।

स्वामीजी की मधुरवाणी का अमृत प्रवाह बंद होते ही विद्यालय के प्रधानाचार्य आभार प्रदर्शन के लिये खड़े हो गये हैं।

प्रधानाचार्य जी–

परमपूज्य स्वामीजी ने कल और आज अपने अमृतमय प्रवचन द्वारा जीवन को सफल बनाने के लिये जो कुछ दिया है, वह अमूल्य है। हम सब तो बालकवत् हैं, जैसे कोई पिता अपने

बच्चों को खेल खिलाकर जाता है, वैसा ही स्वामीजी ने किया है। प्राचीन भारत के आश्रमों जैसे आश्रम बनाना सरल है, परन्तु आज के युग में ऐसे ऋषि मिलना अत्यंत दुर्लभ है जो हमको रोटलार्थी की जगह मोक्षार्थी बना दे। स्वामीजी ने हमको मीठे प्रसाद के साथ-साथ जीवन को सफल बनाने का प्रवचन द्वारा जो अमूल्य प्रसाद दिया है, वह ठीक है, लेकिन उसके कारण तो स्वामीजी द्वारा ऐसा दुर्लभ प्रसाद प्राप्त करने की हमारी भूख और अधिक बढ़ गई है। आभार मानने न मानने की बात तो हम क्या कहें, यह हमारे दिल ही जानते हैं कि अभी अभी हमें स्वामीजी के सान्निध्य एवं अमृत वचनों से कितनी शान्ति एवं आनन्द मिला है! हम सब प्रार्थना करते हैं कि ऐसा ही अमूल्य प्रसाद समय समय पर यहाँ पधार कर हम सब को देने की कृपा करते रहेंगे।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

१०–९–७६
शुक्रवार
६ बजे सायंकाल

"तुम क्या कर रहे हो ? जरा बाहर आ जाओ !" कहते हुए स्वामीजी ने जहाँ लेखक बैठा लिख रहा था, उस कमरे मे प्रवेश किया। उनके पीछे एक और व्यक्ति कमरे में घुस आया। एक छोटा सा टेबल-फेन द्रुत गति से कमरे मे हवा फेंक रहा है। उसके आगे एक साधक ने एक छोटा सा बर्तन रख दिया जिसमें सुगंधित धूप जल रहा है। पंखे की हवा ने उसे और गति देदी। सारे कमरे में सुगंधित धुआँ फैलने लगा।

"तुम अपना बनियान खोल कर इस कमरे में बैठ जाओ।" यह कहकर स्वामीजी लेखक को ओर उन्मुख होकर बोले- "तुम बाहर से दरवाजा बन्द कर दो और थोड़ी देर बाद खोल देना।" लेखक कुछ समझ नहीं पाया कि स्वामीजी ने इस व्यक्ति को कमरे में बन्द करने को क्यों कहा है ? मगर उसे तो आज्ञा का पालन करना था, सो उसने दरवाजा बन्द कर दिया। स्वामीजी धीरे धीरे चलते हुए अपनी कुटिया में चले गए।

लेखक कमरे के बाहर खड़ा है। दो-तीन अन्य साधक भी बाहर मौन खड़े हैं। पंखा चलने की आवाज कमरे में से आती सुनाई पड़ रही है। कहीं अधिक धुंए से नुकसान न हो जाय इसलिये लेखक ने थोड़ी देर बाद कमरे का दरवाजा खोल दिया। वह व्यक्ति बाहर आया तो लेखक ने उसे बड़ी व्यग्रता से पूछा- "भाई ! क्या बात है कि तुमको स्वामीजी की आज्ञा से मुझे कमरे में बन्द करना पडा ? जरा अपना परिचय तो दो !"

वह बोला–मेरा नाम अर्जुन लेखराज रामनानी है। मैं अहमदाबाद शहर में ही रहता हूँ। इधर ४-५ रोज पहले आया था। उस समय पूज्य स्वामीजी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ साथ ही उनका अमृतमय आशीर्वाद भी मिला था।

लेखक—किस बात के लिये आशीर्वाद मिला था ? जरा समझा कर कहो।

वह बोला–क्या समझाऊँ ? मेरे लिये तो वह परम सौभाग्यशाली दिन सिद्ध हुआ है। मैं करीब १५–१६ वर्ष से खुजली से पीड़ित हूँ। इस रोग को ठीक कराने के लिये मैं बहुत भटका हूँ। कई स्पेशिलष्ट डॉक्टरों के द्वार से निराश होकर लौटा हूँ। इस दौड़-धूप में मेरे १५–१६ हजार रुपयों का पानी हो गया है, मगर फायदा कुछ नहीं हुआ। 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की' वाली लोकोक्ति जैसे मेरे लिये ही बनी है, ऐसा मैंने तो लगभग मान ही लिया था। सोच रहा था कि अब इस रोग से छूटने का दुनियाँ में कोई उपाय नहीं है। मगर 'पूज्य श्री' की कृपा हुई और पहली ही बार दर्शन मात्र से काफी फायदा हुआ था। आज दूसरी बार आया तो पूज्य श्री ने यह प्रक्रिया करवाई है। मुझे अब अभूतपूर्व फायदा है ! एक तरह से मुझे नवजीवन मिला है।

इससे लेखक को ७–८ रोज पूर्व की घटना याद आ गई। करीब १३५ किलो मीटर दूर के एक गाँव बोरतवाड़ा से दो व्यक्ति पैदल चलकर आश्रम में पहुँचे। लेखक ने उनसे पैदल आने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा–"पहले हमें यह बताओ कि स्वामीजी

किधर हैं? उनके दर्शन कर लें, फिर सारी बात बताएंगे।"

उसके बाद उन्होने श्रद्धापूर्वक बड़ की परिक्रमा की। थोड़ा विश्राम किया, फिर उन में से एक बोला–मेरे यहाँ पूज्य श्री स्वामीजी महाराज का एक चित्र पूजागृह में रखा हुआ है। मैं रोज श्रद्धापूर्वक उसकी पूजा करता हूँ। कभी कभी मेरी माँ भी सेवा-पूजा करती है। एक बार माँ मुझसे बोली कि 'अरे बेटा, तेरे गुरु महाराज की तू पूजा करता है तो गुरु महाराजने तुझे भक्ति दी है, मगर हमेशा मैं जो इस मंदिर की सफाई व सेवा आदि करती हूँ तो मुझे क्या फल मिलेगा?'

अब मैं क्याजवाब देता? लेकिन अनायास ही मेरे मुख से निकल पड़ा–"माँ तुझे भी फल मिलेगा। तेरी आँखें जो चली गई हैं, वे लौट आएगी।" उस दिन तो बात वहीं समाप्त हो गई, लेकिन कुछ ही दिन बाद मेरी माँ को दिखाई पड़ना शुरु होगया। मेरी माँ की ज्योति लौट आई। यह देखकर हम सबके हर्ष का पार नहीं रहा। मैंने फिर बिना विलम्ब किये इन भाई को साथ लिया और पैदल ही यात्रा करते हुए स्वामीजी के दर्शनार्थ यहाँ पहुँच गया।

इतने में स्वामीजी की कुटिया का द्वार खुला और स्वामीजी बाहर पधारे। बोरतवाड़ा के दोनों भक्त श्रद्धापूर्वक उनके चरणों में गिर पड़े।

ईश्वर की लीला विचित्र है। महापुरुषों की महानता एवं कृपा इस व्यावहारिक बुद्धि व मन से नहीं नापी जा सकती श्रद्धावान् भक्त ही उनकी कृपा का अनुभव कर पाते हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ अमृत - बिन्दु ॐ

यदि आप अपना यह विश्वास बना सकते हैं कि 'आप सदैव से मुक्त हैं' तो आप विश्व ब्रह्माण्ड के उद्धारक हो जाते हैं। यदि आप यह निश्चय करें कि 'आप शरीर कभी नहीं थे'-यदि आप वेदान्त के स्वर में स्वर मिलाकर विश्वास करें कि 'आप सदैव से मुक्त है' तो आप अखिल जगत के मोक्षदाता हो जाते हैं।

ॐ ॐ ॐ

विपत्ति में धैर्य न खोकर जो लोग भगवत् कृपा के विश्वास पर डटे रहते हैं और सत्य के पथ से जरा भी नहीं डिगते, उनकी विपत्ति बहुत ही शीघ्र महान् सम्पत्ति के रूप में बदल जाती है और क्लेश तथा अशान्ति तो उन्हें किसी अवस्था में भी नही होते।

ॐ ॐ ॐ

सदा शान्त रहो, निर्विकार रहो, सम रहने की चेष्टा करो! जगत के खेल से अपने को प्रभावित मत होने दो। खेल को खेल ही समझो! तुम सदा सुखी रहोगे। फिर न कुछ बढ़ाने की इच्छा होगी और न घटने पर कुछ दुःख होगा।

Cover Printed at Dayanand Printry Rajavir Road, Kubernagar, Ahmedabad-382340.